श्री स्वामी रामतीर्थ ।

स्वामी रामतीर्थ ।

दृष्टि-सृष्टिवाद (वा कल्पनावाद)

और

वस्तु-स्वातंत्र्यवाद का समन्वय ।

(Idealism Realism reconciled)

२९ जनवरी १९०३ ई० को गोल्डन गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान ।

महिलाओं और भद्र पुरुषों के रूप में एक मात्र वास्तविक और आदर्श स्वरूप,

आज के व्याख्यान का विषय बड़ा ही जटिल, बहुत ही कठिन है। केवल वही इसे भली भाँति समझ सकेंगे कि जिनका तत्वज्ञान से कुछ परिचय हो चुका है। आप

सब के सब थक कर या खिन्न हो कर चले जायँ, अथवा सारा संसार सुनने आवे, इस में राम के लिये कोई फ़र्क नहीं पड़ता। लोक-प्रियता की सम्पूर्ण अभिलाषा से सत्य परे है। वैज्ञानिक-नियम संसार का शासन करते थे, कर रहे हैं, और सम्पूर्ण विश्व का नियंत्रण करते रहेंगे, लोग चाहे उन्हें जानें या न जानें, वे लोक-प्रिय हों या न हों। सर आईसक निउटन द्वारा आविष्कृत होने से पहले भी आकर्षण-शक्ति का नियम (Law of Gravitation) ज्यों का त्यों था। ऐसे नियम हैं जिनका पता लोगों को चाहे न लगा हो, परन्तु फिर भी वे दुनिया का नियंत्रण कर रहे हैं। खान में पड़ा हुआ एक अति उत्तम हीरा चाहे किसी के हाथ न आया हो, परन्तु हीरे की दमक कहीं चली नहीं जाती। लोग उसे उठा कर चाहे अपने मस्तक पर धारण करें चाहे निरानिर उसकी उपेक्षा करें, हीरे का इस में कुछ नहीं बनता बिगड़ता।

विषय कठिन है; किन्तु यदि आप एकाग्र होकर सुनेंगे, तो समझ सकेंगे। तुम्हें यह नहीं कहना चाहिये कि ऐसे जटिल, दार्शनिक, अव्यावहारिक विषयों पर बोलना व्यर्थ है, हमें इनकी ज़रूरत नहीं, हम तो ठनाठन नगदी चाहते हैं, हमें तो कुछ अमली (आचरणात्मक वा व्यावहारिक) चाहिए। राम अमली (व्यावहारिक वा काम के) विषयों पर भाषण करता रहा है, किन्तु अव्यावहारिक और काल्पनिक विषयों की भी ज़रूरत है। समर्थनके लिये कोई तथ्य बिना गम्भीर तर्क के नहीं समझाया जा सकता, और आप जानते हैं कि आप का सम्पूर्ण व्यवहार (अभ्यास) कर्मशीलता में परिणित आपकी केवल उद्योग शक्ति है और कुछ नहीं है। जब आप को कुछ लिखना होता है, तब आपकी लेखनी चलने से पहले, सम्पूर्ण

विषय कल्पना रूपसे आपके मनमें अवश्य आजाता है। कल्पना सदा कर्मशीलता (प्रवृत्ति)से पहले आती है। जब आप किसी जगह को जाते हैं, तब आपका चलना केवल अभ्यास की बात होती है, किन्तु आप की नसों और हरकतों का नियंत्रण करने को यदि मन वहां न हो, तो एक पग भी नहीं बढ़ाया जा सकता। कोई विद्यार्थी महाविद्यालय को तब तक नहीं जाता, जब तक विश्वविद्यालय का विचार पहले ही से उसके मन में नहीं होता, जब तक यह ज्ञान उसे नहीं होता कि किस प्रकारकी शिक्षा उसे वहां मिलनी है। जब कोई चोर बराबर किसी पड़ोसी विशेष की दौलत और अमीरी की चर्चा सुनता रहता है, तब इस निरन्तर मिलने वाले समाचार को, अपने अखंड विचार को वह कार्य का रूप दे देता है, और अमीर पड़ोसी के घर में सेंध देने की हिम्मत करता है। किसी प्रकार की मानसिक प्रवृत्ति (क्रियाशीलता) के बिना, जो काम करना हो उसके संबंधमें पहले ही से किसी प्रकार के ज्ञान के बिना, कोई काम पूर्ण नहीं हो सकता।

इस लिये राम तुम्हारे कानों में तुम्हारे ईश्वरत्व का ढोल पीटने और सब श्रोताओं के हृदयों में उसके उतारने का यत्न करता है। आप दिन बदिन अपने हृदयों में यह भाव खचित होने दो, अपने मनों में घंटे बघंटे उसे धँसने दो, और आप देखोगे कि विज्ञान के नियमों के अनुसार, यह मानसिक तेज जो व्यर्थ का कल्पना बाद जान पड़ता है, अत्यन्त श्रेष्ठ कर्मठता का रूप धारण करेगा, और इस ज्ञान को आप अपने लिये आनन्द और कल्याण में रूपान्तरित होते देखोगे।

विषय है "वेदान्त के विचारानुसार दृष्टि-सृष्टिवाद और

वस्तुस्वातंत्र्यवाद का समन्वय"। दूसरे ग्रन्थ में "इन्द्रिय-ज्ञान के संबंधमें वदान्त का मत" विषय है—जो तत्वज्ञानियों के लिये बड़े ही माक का है।

दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तु स्वातंत्र्यवाद के सबंध में तुम्हें कुछ बताया जाना चाहिए। इन प्रसगों के न्योरों (विस्तार) में जाने का हम अवकाश नहीं है। सक्षप में वस्तु स्वातंत्र्यवाद (Realism) का अर्थ है वह विश्वास या मत जो इस संसार को वैसा ही ठीक गोचर वस्तु मानता है जैसा कि यह दिखाई पड़ता है। दृष्टि सृष्टिवाद में संसार वैसा ही नहीं है जैसा हमें जान पड़ता है, ससार है परन्तु जैसा प्रतीत होता है वैसा नहीं है। और वस्तु स्वातंत्र्यवाद के अनुसार चीजें ठीक वैसी ही हैं जैसी हम जान पड़ती हैं, वे वास्तव में सच्ची हैं। दृष्टि-सृष्टिवाद की कई शाखाएँ हैं। एक तो आत्मगत कल्पनावाद Subjective Idealism) जैसा बर्कले (Berkeley) और फिक्ट (Fichte) का। दूसरा विषयाश्रित (वा अनात्म सम्बन्धी) कल्पना-वाद (Objective Idealism) जैसे अफलातूं (Plato) और कंट (Kant) का, और शुद्ध वा केवल कल्पनावाद है, जो हेगेल (Hegel) और शेली (Shelley) तथा उसी श्रेणी के अन्य अनेकों का है। वस्तु स्वातंत्र्यवाद के समर्थक भी बेन (Bain) और मिल (mill) की तरह अनेक दार्शनिक हैं। दृष्टि सृष्टिवाद या वस्तु-स्वातंत्र्यवाद की इन विविध शाखाओं की व्याख्या हम न करेंगे। आज के व्याख्यान में हम बर्कले (Berkeley) के आत्मगत कल्पनावाद, या अफलातूं (Plato) वा और कंट (Kant) के विषयात्मक (अनात्म संबन्धी) कल्पनावाद, या हेगल (Hegel) अथवा

शेली (Shelly) के शुद्ध वा केवल कल्पनावाद की आलोचना (वा गुणागुण परीक्षा) न करेंगे। हम इनका ज़िक्र वहीं तक करेंगे जहाँ तक इस सम्बन्ध में वेदान्त का मत आसानी से हरेक की समझ में आने में मदद मिल सके।

विषयारम्भ से पहले दो शब्दों (Subject and object) 'आधार' (ज्ञाता) और 'आधेय' (विषय) को समझा देना चाहिए। आप जानते हैं कि इन दोनों शब्दों से कई अर्थ ग्रहण किये जाते हैं। व्याकरण में ये एक विशेष अर्थ देते हैं। साधारण भाषा में इनका दूसरा ही अर्थ होता है। और दार्शनिक भाषा में इनका अपना विभिन्न अर्थ है। तत्वज्ञान की भाषा में 'आधार' का अर्थ है ज्ञाता, और 'आधेय' का अर्थ है ज्ञात-द्रव्य (पदार्थ)। जब आप यह पेंसिल देखते हैं, तब पेंसिल तो द्रव्य पदार्थ है और पेंसिल के देखने वाले आप ज्ञाता हैं। देखनेवाला ज्ञाता कहलाता है और जो वस्तु देखी जाती है वह द्रव्य वा पदार्थ कहलाती है। इस तरह साधारण बोलचाल में 'ज्ञाता' शब्द का अर्थ समझ या बुद्धि है; किन्तु वेदान्त के अनुसार समझ या बुद्धि या मति को ज्ञाता नहीं कह सकते, बुद्धि भी विषय या द्रव्य है। आप जानते हैं कि हरेक वस्तु जो जानी जा सकती है वह द्रव्य वा विषय है। और आप बुद्धिको जान सकते हैं, आप उसके सम्बन्ध में विचार और तर्क कर सकते हैं और उसके नियमों का निर्धारण कर सकते हैं। जिस अंश तक आपको उसकी धारणा हो सकती है और आप उसके संबंध में तर्क कर सकते हैं, उस हद तक मति 'विषय' या 'द्रव्य' है, और 'ज्ञाता' नहीं है। वास्तविक ज्ञाता की धारणा वा कल्पना नहीं हो सकती, वास्त-

विक ज्ञाता का अवलोकन नहीं होसकता। जाननेवाला कैसे जाना जा सकता है? आपजानते हैं कि वास्तविक ज्ञाता या तो जाननेवाला हो सकता है,या जानने की वस्तु; ज्योंही वह ज्ञात (जानने वाली वस्तु) होता है, त्योंही वह द्रव्य (ज्ञेय वा विषय) बन जाता है, और ज्ञाता नहीं रहता। किन्तु साधारण बोलचाल में 'आधार वा ज्ञाता' शब्द से मन, बुद्धि, या मति का बोध होता है। वेदान्त के अनुसार वास्तविक आधार या वास्तविक ज्ञाता, सच्चा आत्मा, एक मात्र अनन्तता है, जो सब देहों में एक और वही है। इस संबंध में एक संस्कृत शब्द को भी याद रखना उपयोगी होगा। 'आधार' शब्द संस्कृत में द्रष्टा कहलता है, और 'आधेय शब्द संस्कृत में दृश्य कहलाता है। और संस्कृत में वास्तविक दृष्टा ब्रह्म वा आत्मा है। अंग्रेज़ी में 'आत्मा' शब्द का पर्यायवाची शब्द शोपेनहावर (Schopenhauer) का "विल" (Will संकल्प) हो सकता है, या हेगेल (Hegel) का 'हार्ड इंटेलेक्ट' (hard Intellect, ठोस बुद्धि) अथवा ऐवसोल्यूट इंटेलेक्ट (Absolute Intellect=शुद्ध वा केवल बुद्धि)। आप जानते हैं कि हेगेल और शोपेन-हावर का आपस में विरोध है। किन्तु वेदान्त उनको मिला देता है। वेदान्त उन्हें बताता है कि शोपेनहावर का 'केवल संकल्प,वास्तव में वही है जिसे हेगेल "केवल बुद्धि" कहता है, और इस प्रकार केवल वा शुद्ध आत्मा के लिये हमारा शब्द ब्रह्म है जिसका अर्थ है केवल संकल्प,केवल चित्,केवल सत् और केवल आनन्द (अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्द)।

सो वास्तविक द्रष्टा शुद्ध आत्मदेव है। परन्तु व्यावहारिक द्रष्टा बुद्धि या मन में प्रकाशमान आत्मदेव है। इस

तरह शुद्ध आत्मा सहित अपने गुमाशता बुद्धि के द्रष्टा कहलाता है।

वस्तु-स्वातंत्र्यवादियों के पक्ष की दलीलें क्या हैं, और दृष्टि-सृष्टिवादी अपने पक्ष के समर्थन में किन २ मुख्य युक्तियों का उपयोग करते हैं? यह एक लम्बा विषय है, परन्तु बहुत ही संक्षेप में हम इस पर विचार करेंगे। बर्कले का खण्डन करने के लिये हमारे पास समय नहीं है। वह एक मुख्य कल्पना-वादी है। बड़ी ही चुस्ती से वह अपने तत्वज्ञान का प्रारम्भ करता है, और जब तक वेदांत दर्शन के ठीक साथ साथ रहता है, तब तक ऊँची उड़ाने मारता है, किन्तु वेदान्त दर्शन से अलग होते ही वह रास्ता भूल जाता है, और घूम घुमौआ, टेढ़े मेढ़े (उतार चढ़ाव) पथों में भटकता फिरता है। यह बड़ा ही रोचक विषय है। ऐसा विषय है कि यदि राम को विश्व-विद्यालय के अध्यापकों और विद्यार्थियोंके सामने भाषण करनेका मौका मिले तो इस पर अवश्य विचार होना चाहिए। बर्कलेके तत्वज्ञानके उत्तरांश की पूर्वांश से तनिक तुलना तो कीजिये। कैसे वह अनेक आत्माओं को मानने और फिर उन्हें इस विश्व के नियंत्रण के लिये साकार (Personal) ईश्वर के अन्तर्गत करने में लाचार होता है। और कैसे उस के तत्वज्ञान के अनुसार कोई भी द्रव्य इस संसार में तब तक उपस्थित नहीं हो सकता, जब तक कि एक आत्मा उस के निकट न हो। और भी कितनी ही बेतुकी बातें उसे घुसेड़नी पड़ती हैं। अच्छा, यह वह विषय है जिसे आज हम नहीं उठाना चाहते। दृष्टि-सृष्टिवादी वा कल्पनावादी (Idealists) जो अनेक दलीलें पेश करते हैं, उन में ये दो या तीन महत्वपूर्ण

हैं। प्रथम यह है कि अपनी निजी क्रिया-शीलता के विना आप को किसी वस्तु का वोध नहीं हो सकता, और न कोई वस्तु देखने में आ सकती है। यह केवल द्रष्टा की ही क्रिया-शीलता (प्रवृत्ति) है कि जिस से आप को इस दुनिया में किसी वस्तु का वोध होता है। आप कुछ लिख रहे हैं, आप का ध्यान उस विषय पर जमा हुआ है, वहां आप के सामने से एक साँप निकल जाता है, किन्तु आप उसे नहीं देखते, साँप आप के लिये साँप नहीं है, वह वहां है ही नहीं। पुनः कल्पनावादी कहते हैं कि यदि आप के मन की कर्मठता वा द्रष्टा के व्यापार का अभाव है, तो कहीं कोई वस्तु नहीं है। जब आप सोते रहते हैं, तब द्रष्टा क्रियाशील नहीं होता है, और इर्दगिर्द कुछ भी आवाज़ हो वह सुनाई नहीं पड़ती है। कुछ लोग ऐसे हैं जिनकी आंखें सोते समय बन्द नहीं होती हैं। उन के नेत्रों के सामने सब वस्तुएँ मौजूद हैं, उन के नेत्रों के आन्तर्पट (retina) पर वस्तुओं का प्रतिविम्व पड़ता है, किन्तु वे उन्हें नहीं देखते। कल्पनावादियों का कहना है कि आप का मन निष्क्रिया है, कर्त्ता अपनी क्रिया-शीलता का निरूपण नहीं कर रहा है, और इसी से तुम्हें वस्तुएँ नहीं दिखाई पड़तीं। मानसिक व्यापार के विना क्या आप इस दुनिया की कोई भी वस्तु देख सकते हैं? नहीं। मन के विना क्रियाशील हुए आप यह मेज़ अथवा वह दिवाल देखने की तनिक चेष्टा कीजिये, राम के शब्द सुनने का यत्न कीजिये, किसी भी वस्तु के वोध करने का यत्न कीजिये। क्या ऐसा आप कर सकते हैं? विना सोचे, विना अपने मन के संकल्प के क्या आप कोई वस्तु देख सकते हैं? आप नहीं देख सकते। इस प्रकार कल्पनावादी कहते हैं कि यह सारी दुनिया संकल्प के सिवाय और कुछ भी

नहीं है, यह सम्पूर्ण संसार केवल संकल्प का विस्तार है। आप कैसे जानते हैं कि संसार का अस्तित्व है? अपनी इन्द्रियों के द्वारा । किन्तु इन्द्रियां स्वयं नहीं बोध कर सकती। जब मन का इन्द्रियों से संयोग होता है तभी उन्हें बोध होता है, दूसरे शब्दों में इन्द्रियां नहीं देखतीं बल्कि इन्द्रियों के द्वारा मन देखता है । अब मन या बुद्धि द्रष्टा है। मानसिक व्यापार के बिना आप कुछ नहीं सुन सकते, आप कुछ नहीं देख सकते, आप कुछ नहीं कर सकते । मानसिक क्रियाशीलता के बिना आप को किसी वस्तु का भी बोध नहीं हो सकता। इस लिये कल्पनावादी कहतेहैं, "ए इस दुनियाके लोगों! तुम जो इस दुन्या को सत्य कहते हो और (दुन्या की) इन वस्तुओं को स्वतंत्र रूपसे सत्य मानते हो, अपने आप को न भूलो, आप स्वयं भ्रम में न पड़ो। इन सब वस्तुओं की सृष्टि तुम्हारे द्वारा होती है, या तुम्हारे संकल्प द्वारा होती है, वास्तव में तुम इन्हें बनाते हो। " यही कल्पनावादी कहते हैं। और ऐसा जान पड़ता है कि कल्पनावादी कुछ कुछ वेदान्तियों के समान हैं। परन्तु राम आप से कहता है कि इन सब कल्पना-वादियों (बर्कले, अफलातूँ, हेगेल, कांट, फिक्टे, शैली, शोपनहावर) में वेदान्त के सिद्धान्त हैं। किन्तु बोध होने के सम्बन्ध में वेदान्त का मत इन सब से कहीं दूर है । इन लोगों में आपस में एक दूसरे से झगड़ा है, उन में बखेड़ा और विरोध है, किन्तु वेदान्त दर्शन इन सब की पटरी बैठा देता है, इन की संगति वा समन्वय कर देता है। ये लोग अपने (मन) को बड़ा महत्व देते हैं, और उस सम्बन्ध बहुत कुछ बताते हैं। किन्तु वेदान्त इस द्रष्टा रूप (मन वा बुद्धि) को अधिपति वा सर्व सर्वा और देवता नहीं बनाता, जैसा कि इन में अधिकांश दार्शनिक

करते हैं। हमें सत्य को सत्य के लिये ग्रहण करना है।

कल्पनावादियों की दूसरी दलील यह है कि यह दुनिया, जिसे लोग साधारणतः वास्तविक समझते हैं, वास्तविक न समझी जानी चाहिये, क्योंकि दुनिया केवल इद्रियों द्वारा ऐसी जान पड़ती है, और संसार को, जैसा कुछ वह हमें जान पड़ता है, वास्तव में सत्य कहने के लिये हमें इंद्रियों पर निर्भर करना पड़ता है। इन्द्रियाँ विश्वास के योग्य गवाह नहीं हैं। उदाहरण के लिये आँख का मामला ले लीजिये। चींटी की आँखें मनुष्य की आँखों से भिन्न तौर पर देखती हैं। हाथी के नयनों को मनुष्य की आँखों की अपेक्षा वस्तुएं बहुत ही बड़ी दिखाई देती हैं। मेढ़क की आँखों को पानी में चीज़ें स्पष्ट दिखाई देती हैं, परन्तु बाहर हवा में धुंधली कोहरेदार एक प्रकार के धुंध से ढकी जान पड़ती हैं। अब किस की आँखों पर विश्वास किया जाय? मनुष्य की आँखों पर या चींटी की आँखों पर? यदि बहुमत से फैसला किया जाय,तो चींटियों की संख्या कम नहीं है। बहुमत उनकी ओर है। यदि आप के नेत्र सूक्ष्मदर्शकयंत्र के सिद्धान्त (microscopic principle) पर बने हों,यदि आँख के काँच (जो चीज़ों को छोटा या बड़ा बनाते हैं) आँख के अन्तर्पट से प्रतिकूल ढँग पर लगे हों, तो दुनियाँ आप के लिये बिलकुल भिन्न हो जायगी। यदि नेत्र का फलक या अन्तर्पट दूरदर्शकयंत्र के सिद्धान्त पर लगा हुआ हो, तो सारी दुनियाँ बिलकुल बदली हुई होगी। वह खिलौना जिसे देखो और हंसो(Look and laugh glass) कहते हैं,अथवा हास्य जनक दर्पण जिसमें दो कूर्मपृष्ठाकार(convex)काँच लगे होते हैं, उसको आपने देखा होगा। इस के द्वारा देखने से संसार

की सब वस्तुएँ कौतूहल जनक(ludicrous)हास्योत्पादक हो जाती है। "देखो और हंसो" के शीशे द्वारा देखे जानेपर अत्यन्त सुन्दर चेहरा भी यहाँ तक लम्बा हो जाता है कि ठोड़ी ज़मीन में छू जाती है और मूढ़ शनिग्रह को छू जाता है यदि दूसरी तरह पर आप इसमें देखो,तो चेहरे की लम्बाई तो वही रहती है,किन्तु एक कान पूर्वी भारत (EastIndia) तक पहुँच जाता है, और दूसरा कान चीन (china) की खबर लेता है। अच्छा,यदि आँखें इस सिद्धान्तपर लगी हों,तो दुनिया बिलकुल बदल जाती है। यही हाल कानों और दूसरी ज्ञानेन्द्रियों का है। यदि नसों और मज्जातन्तुओं (शिरा वा पट्ठों) को भिन्न तरह पर लगाया जाय, तो सम्पूर्ण संसार भिन्न प्रकार का हो जाय, सारी दुनिया बदल जाय। आप कहेंगे कि मज्जातन्तु (muscles) और नसें (nerves) और ज्ञानेन्द्रियां Sense organs जिस तरह पर लगी हुई हैं,वैसी ही रहेंगी। तो यह बात नहीं है। विकासवादका नियम (सिद्धांत) कहता है कि उनमें तबदीली हो रही है। इस तरह पर कल्पनावादी कहते हैं कि दुनिया जैसी जान पड़ती है, वैसी नहीं है; दुनिया, जैसी प्रतीत होती है, मिथ्या है; दुनिया जैसी हमें मालूम पड़ती है असत्य है, माया है, भ्रान्ति है।

और भी बहुतेरी दलीलें अपने पक्ष में वे देते हैं। किन्तु यदि उन पर हम ब्योरेवार विचार करें,तो केवल कल्पनावाद ही अनेक रातें ले लेगा। अब हम वस्तु-स्वातंत्र्यवाद पर आते हैं। वस्तु-स्वातंत्र्यवादी कहते हैं, "ओ कल्पनावादियों! तुम गलती पर हो, तुम बिलकुल गलती पर हो, हरेक वस्तु जो हम देखते हैं उसकी सृष्टि हमारी कल्पना ने की है, तुम्हारा यह बयान यदि सही हो, तो ये कल्पना-

वादियों जहाँ दिवाल है,वहाँ घोड़ा पैदा तो कर दो। वह दिवाल घोड़ा तो मालूम पड़ने लगे। ऐ कल्पना-वादियों! यदि संसार इस छोटे से द्रष्टा की बुद्धि या मन का केवल नतीजा है, तो इस रुमाल को सिंह में बदल दो, या इस पेंसिल को एक भव्य भवन बना दो।" वस्तु-स्वातंत्र्यवादी कहते हैं, "ऐ कल्पना-वादियों! तुम्हारी बात ठीक नहीं है, दुनिया सच्ची है। दिवाल दिवाल है और इसी कारण आप की ज्ञानेन्द्रियों पर सदा उसके दिवाल होने का प्रभाव पड़ता है, कल वह तुमको घोड़ा रूप नहीं जंचती।"

कल्पनावादी वस्तु-स्वातंत्र्यवादियों की इन शंकाओं का उत्तर देते हैं। इन आपत्तियों के उत्तर उन के पास हैं। किंतु दोनों ओर के सब प्रश्नों को हम न उठावेंगे। कल्पना-वादी कहते हैं कि यह प्रश्न काल वा समय का है। आप अपनी कल्पना से जिस वस्तु की चाहे रचना कर सकते हैं। जब आप मृत-प्राणियों का विचार करने लगते हैं,तब मृत-प्राणी आप को दिखाई देते हैं। हम जब किसी वस्तु का विचार करते हैं,तब वह हमें प्राप्त होती है। उनका कहना है कि स्वप्नों में क्या हम सब वस्तुओं की सृष्टि नहीं करते हैं? हमारी कल्पना इन वस्तुओं का अनुभव करती है। कल्पना-वादियों के ये उत्तर हैं और वस्तु-स्वातंत्र्यवादी इन उत्तरों के भी उत्तर रखते हैं। इन प्रश्नोत्तरों के ब्यौरे में हम नहीं पड़ना चाहते।

वेदान्त भी संसार को मेरा संकल्प, मेरी सृष्टि-रूप मानता है। परन्तु संसार को मेरा विचार, मेरी सृष्टि मानते हुए भी आप उसे कल्पनावाद नहीं कह सकते। राम के मुख से यह बात बहुत ही विलक्षण सी जान पड़ती है। इसे फिर

दोहराता हूँ। यूरोप और अमेरिका के लोग समझते हैं कि वेदान्त एक प्रकार का कल्पनावाद है, और यूरोपियनों की लिखी हुई जो पुस्तकें राम ने पढ़ी हैं प्रायः उन सभी में वेदान्त को कल्पनावाद कहा गया है। किन्तु राम आप से कहता है कि इन लोगों ने वेदान्त को समझा नहीं है। वेदांत वैसा कल्पनावाद नहीं है जैसा बर्कले या अफलातूँ का कल्पनावाद है। वेदान्त इस से कहीं ऊँचा है, कहीं श्रेष्ठ है।

कल्पना-वादी संसार को क्षुद्र द्रष्टा, तनिक सी बुद्धि, व छोटे से मन पर आश्रित करते हैं। किन्तु वेदान्त जब कहता है कि संसार मेरा विचार या संकल्प है, तो उसका यह अर्थ नहीं कि संसार क्षुद्र द्रष्टा, नन्हीं सी बुद्धि, छोटे से मन का संकल्प है। यह तो एक परिवर्तन-शील वस्तु है, यह स्वयं एक रचना है, और बर्कले का यह कहना भयंकर भूल है कि स्वप्न जो हैं वे (स्वप्नों)के द्रष्टा की रचना है। उसने भूल यह की कि स्वप्नावस्था के पदार्थों के द्रष्टा को उसने जाग्रतावस्था के द्रष्टा से अभिन्न समझा। आप जानते हैं, जैसा कि कल रात को दर्शाया गया था, कि स्वप्नावस्था का द्रष्टा जाग्रतावस्था के द्रष्टा से भिन्न है। स्वप्नलोक का द्रष्टा भी उसी तरह का एक पदार्थ है जिस प्रकार की स्वप्नलोक की वस्तुएँ हैं। जब आप जागते हैं, तब जाग्रतावस्था का द्रष्टा भी उसी तरह का है जैसी उस अवस्था की वस्तुएँ हैं, और बर्कले ने जाग्रतावस्था के द्रष्टा को वही समझा जो स्वप्नावस्था का था। संसार जाग्रतावस्था के द्रष्टा या स्वप्नावस्था के द्रष्टा की रचना नहीं है। संसार मेरे स्वरूप, वास्तविक ईश्वर, शुद्ध आत्मा की रचना है।

अब हम 'बोध सम्बन्धी वेदान्त-मत' के विषय पर

आते हैं।

वेदान्त कल्पनावादियों से कहता है, "ऐ कल्पना-वादियों! तुम्हारा वह कहना यथार्थ है कि इस दुनिया के सब नाम और रूप, वस्तुओं के सम्पूर्ण गुण और लक्षण द्रष्टा की क्रियाशीलता के विना नहीं हो सकते"। इस को फिर कहता हूँ। विषय बड़ा क्लिष्ट है और आप को खूब ध्यान देना चाहिये। वेदान्त कल्पनावादियों से कहता है, "तुम्हारा यह कहना ठीक है कि द्रष्टा के कार्य के विना इस संसार के सब नाम और रूप नहीं हो सकते; वस्तुओं के सब लक्षण गुण और धर्म बुद्धि या मन या द्रष्टा की क्रियाशीलता और क्रिया पर निर्भर हैं। यहां तक तुम ठीक हो। किन्तु तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं है कि इस छोटे द्रष्टा, तुम्हारे इस छोटे से मन से वाहर कुछ भी नहीं है।" वेदान्त वस्तु-स्वातंत्र्यवादियों से कहता है, "तुम्हारा यह कहना ठीक है कि इस गोचर वा नाम रूप संसार का प्रादुर्भाव केवल किसी वाहरी सत्यता के कार्य से नहीं हो सकता।" आप जानते हैं कि वस्तु-स्वातंत्र्यवादी कहते हैं कि इस दृष्टिगोचर दुनिया का कारण हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर कोई वाहरी क्रिया वा प्रभाव है। इन्द्रियों पर वस्तुओं की क्रिया होती है और इस प्रकार हमें वस्तुओं का बोध होता है। वेदान्त कहता है, "हां बाहर से विना किसी प्रकार की क्रिया वा प्रभाव के हमें वस्तुओं का बोध नहीं हो सकता।" यहां तक वस्तु-स्वातंत्र्यवाद ठीक है। किन्तु वेदान्त के अनुसार वस्तु-स्वातंत्र्यवाद तब गलती करता है जब कहता है कि हमारे सम्पूर्ण बोध का कारण एकमात्र और पूर्णतया बाहरी कार्य (प्रभाव) और द्रष्टा की कर्मण्यता है। इसे हम

और स्पष्ट किये देते हैं। इस संसार का कोई भी विषय, कोई भी वस्तु, उदाहरण के लिये, यह पेंसिल, ले लो। इस पेंसिल के रंग का कारण क्या है? आप कह सकते हैं, द्रष्टा की क्रिया के साथ ही बाहर की प्रतिक्रिया कारण है। यदि तुम्हारी आँखों को कोई रंग नहीं सूझता, तो तुम्हें पेंसिल का यह रंग न सूझेगा। पेंसिल का रंग एक गुण या धर्म है। फिर पेंसिल का वजन ले लो। वह बदल सकता है,और ऐसे ही रंग भी बदल सकता है। यदि हमारी आँखों में पाँडु-रोग हो, तो पेंसिल हमें दूसरे ही रंग की दिखाई पड़ेगी। और यदि हम इसे यहाँ न तौल कर बड़े ऊँचे पर, या चन्द्रलोक में, या गहरी खान में तौलें, तो इसके बोज (वजन) में फर्क होगा। और आप जानते हैं कि हरेक वस्तु का बोझ जब वह लंदन में तोली जाती है तब कुछ और होता है, और भारत वर्ष में कुछ और; तौलमें भेद हो जाता है। बोझ परिवर्तन शील है, रंग परिवर्तन शील है।

आप जानते हैं कि वही पानी जाड़ेमें छूनेपर आपको गरम जान पड़ता है, और गर्मी में छूने पर शीतल लगता है। क्यों? क्योंकि द्रष्टा या बोध करने वाले में पानी छूने के समयों में गर्मी-सर्दी का अंश विभिन्न होता है, और पानी में गर्मी सर्दी का अंश लगभग वही रहता है,देखने में हमारे हाथों की गर्मी सर्दी के भेद के कारण जल में गर्मी सर्दी के अंश का भेद है। इसी तरह द्रष्टा में भेदों के अनुसार वस्तु के गुणों में भी भेद हो जाँयगे।

और यह पेंसिल काहे की बनी है? बर्कले और कुछ अन्य दार्शनिकों के अनुसार, गुणों और धर्मों की एक पोटली के सिवाय और कुछ भी यह नहीं है। इन गुणों को

ले लीजिये,कुछ भी नहीं बच जाता। किन्तु केन्ट के अनुसार वास्तविक वस्तु इसके पीछे है। और अफलातूँ के अनुसार इसके पीछे स्वयं वस्तु है, जिसे वह विचार या कल्पना कहता है। इस तरह यहां वहां गुण हैं। इन सब गुणों का कारण द्रष्टा का कार्य है। किन्तु हमारा कहना है कि इस प्रतिकृया से पेंसिल में ये गुण पैदा होने से पहले कुछ असलियत वहां थी। यह बात और भी साफ की जायगी, और यदि तुम राम से कहोगे, तो फिर दोहरा दी जायगी। यह सत्य है कि वेदान्त कहता है कि पेंसिल में इन सब गुणों का कारण द्रष्टा का कर्म है, परन्तु द्रष्टा का कर्म कैसे उत्तेजित हुआ? यह प्रश्न है। बाहर कोई वस्तु अवश्य होना चाहिए जिसने द्रष्टा पर क्रिया की (प्रभाव डाला), और द्रष्टा में प्रतिक्रिया उतेजित की, और तब ये गुण पैदा हुए या जमा किये गये। हम यह नहीं कह सकते कि इस द्रष्टा के कार्य से पहले ही इन गुणों ने स्वयं ही मन पर कार्य किया (प्रभाव डाला) और मन की क्रिया या प्रतिक्रिया को उत्तेजित किया। हम ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि ये गुण मन की क्रिया या प्रतिक्रिया के बाद प्रकट होते हैं। इस लिये बाहर कोई चीज़ अवश्य होना ही चाहिये, पेंसिल में कुछ वास्तविकता का होना ज़रूरी है, जिसने तुम्हारी आँखों पर काम किया, (प्रभाव डाला). जिसने तुम्हारे कानों पर काम किया जब कि आवाज सुनाई पड़ी थी, जिसने तुम्हारे स्वाद पर काम किया जब कि तुमने उसे जुबान से छुआ था, जिसने तुम्हारे हाथ पर काम किया जब कि तुमने स्पर्श किया। बाहर कोई वस्तु होना ही चाहिये जो आंख, कान, और नाक पर काम करती है। इस पैंसिल को खा जाओ तो तुम्हारे स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ेगा। तुम कैसे कह सकते हो

कि बाहर कोई असलियत है नहीं ? बाहर भी कुछ असलियत है. और मनुष्य की इन्द्रियों पर जब वह काम करती है तब इन्द्रियां मन को खबर पहुँचाती हैं, और मन प्रतिक्रिया करता है। तब वस्तु के गुण वा धर्म बाह्य स्थल (दृश्य) में प्रकट होते हैं। यह ठीक इस प्रकार से है। यहां एक हाथ है, वहाँ दूसरा है। केवल एक हाथ कोई शब्द नहीं कर सकता। दोनों हाथों से (ताड़ी बजाकर देखो यों) आवाज़ पैदा होती है। यहां एक ओर से क्रिया हुई, और दूसरी ओर से प्रतिक्रिया, और परिणाम हुआ शब्द। यह सारंगी का एक तार है। तुम इस पर अपनी अंगुली चलाते हो, तब इससे आवाज़ पैदा होती है। तुम्हारी अगुली ने क्रिया की थी, और तार ने प्रतिक्रिया। अथवा आप कह सकते हैं, कि तार ने क्रिया की और अंगुलियों ने प्रतिक्रिया, और तब आवाज़ पैदा हुई। इसी तरह, एक लहर इस तरफ से आई और दूसरी आई उस तरफ से, दोनों लड़ गईं, और फेना पैदा हुआ। यह एक दियासलाई है, और यह एक टुकड़ा बलुआ-कागज (sand paper) है। दियासलाई की चोट बलुआ-कागज पर लगाओ, तब लपट पैदा होती है। क्रिया और प्रतिक्रिया दोनों ओर से। यहां बिजली का एक धनात्मक स्तम्भ positive pole) है, और वहां ऋणात्मक स्तम्भ (negative pole) है। उनके एक दूसरे के पास पहुंचने पर हमें बिजली की चिनगारियां दिखाई देती हैं, या आवाज़ सुनाई पड़ती है। इस (इंद्रिय गोचर) दृश्य की उत्पत्ति दोनों ओर की क्रिया और प्रतिक्रिया से होती है।

इस प्रकार वेदान्त के अनुसार, तुम्हारी बुद्धि में तत्त्व रूप वस्तु स्वयं मौजूद है, जिसे हम आत्मा कहते हैं। सच्चा

स्वरूप (आत्मा) तुम्हारी बुद्धि में रहता है, इस संसार की हर एक वस्तु में तत्त्ववस्तु है या सत्यता है। इस पेंसिल में असलियत है, अथवा आप कह सकते हैं कि खुद ऐसी कोई वस्तु है, जो जानी नहीं जा सकती,जो सब गुणों या धर्मों से परे है। बाहरी सत्यता अर्थात् पेंसिल में ईश्वरता या तत्त्व-वस्तु और बुद्धि में तत्त्ववस्तु मानों दो हाथ हैं। उनकी भिड़न्त (परस्पर टक्कर) होते ही पेंसिल के गुणों की स्थापना हो जाती है, फेन की तरह वे प्रकट हो जाते हैं; एक लहर एक ओर से, और दूसरी लहर दूसरी ओर से, और फेन पैदा हो गया, अर्थात् ये गुण प्रकट हो गये। आप कह सकते हैं कि धनात्मक खंभा (positive pole) बुद्धि में है और ऋणात्मक (negative pole) पेंसिल में,तथा दोनों के मिलने पर हमें गुणों के दर्शन होते हैं। वेदान्त की भाषा में, द्रष्टा और दृश्य के एक होते ही हमें वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं। दृष्टा और दृश्य पेंसिल में वास्तविक स्वरूप या आत्मा है, और बुद्धि में तत्त्वस्वरूप या आत्मा है, और दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया नाम रूप दृश्य का चमत्कार पैदा करती हैं।

इस तरह कल्पना वादियों का यह कहना ठीक है कि द्रष्टा के कार्य (व्यापार) के बिना कुछ (दृश्य) भी नहीं देखा जा सकता। किन्तु उनका यह कहना ग़लत है कि दृष्टा का केवल यह कार्य (व्यापार) आप ही इस गोचर-वस्तु की उत्पत्ति करता है, क्योंकि उनके इस कथन से विज्ञान का एक अटल (निष्ठुर) नियम भंग होता है। वह नियम इस प्रकार है।

> "There can be no action without an equal and opposite reaction"

एक समान,आमने सामने एक, क्रिया की प्रतिक्रिया हुए

बिना कोई कार्य नहीं हो सकता। कल्पनावादी जब कहते हैं कि "इस सम्पूर्ण संसार की सृष्टि द्रष्टा की क्रिया से होती है", तब वे इस तथ्य की उपेक्षा करते हैं, अथवा इस तथ्य को नितान्त छोड़ देते हैं कि कहीं बिना प्रतिक्रिया हुए यह कार्य हो नहीं सकता। और इस लिये वस्तु-स्वातंत्र्यवादियों का यह कहना ठीक है कि इस दुनिया में खुदही एक उसकी अपनी असलियत है, और वह केवल द्रष्टा पर ठहरी हुई वा आश्रित नहीं है। यहां तक तो वे ठीक हैं, किन्तु जब वे कहते हैं कि इस दुनिया का दृश्य वा नाम रूप स्वयं ही सत्य है, और अपने आप पर ठहरे हुए हैं, तब वे भूल करते हैं, क्योंकि इस दुनिया का विकार (नाम रूप दृश्य, इस दुनिया के भेद, इस दुनिया की वस्तुओं के गुण, द्रष्टा की क्रिया पर ठीक उतना ही निर्भर हैं जितना कि वस्तु के भीतर की वास्तविकता की प्रतिक्रिया पर।

यहां पर एक बड़ी शका उठती है। "तुम जो क्रिया और प्रतिक्रिया की बात कहते हो। तब अनन्तता में क्रिया और प्रतिक्रिया कैसे हो सकती है? क्रिया और प्रतिक्रिया की चर्चा हमने इस लिये की थी कि उसी शब्दावली का प्रयोग किया जाय जिसका दूसरे लोग करते हैं। बुद्धि या वस्तु से संयुक्त परम संकल्प या परम शक्ति का जब हम ज़िक्र करते हैं, तभी क्रिया और प्रतिक्रिया की चर्चा करते हैं। परम सत्ता जो है, वह इस वस्तु से संयुक्त है जो उसके विरुद्ध क्रिया या प्रतिक्रिया करती है, और इसी प्रकार इस वस्तु के साथी, वा इस वस्तु से मिले हुए शिर, मस्तिष्क या बुद्धि से भी वह संयुक्त है। यह दृष्टान्त लीजिये। इस पात्र में आकाश है, और उस पात्र में भी। वास्तव में आकाश दोनों में एक ही और

वही वस्तु है,किन्तु विभिन्न पात्रों में उसका प्रगट होना आप कह सकते हैं। देश या आकाश कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसका वर्ताव (प्रयोग) तुम उसी तरह कर सकते हो जिस तरह इस रुमाल का। आकाश एक और वही है, अखंड है। आकाश में विभाग की तो कोई कल्पना ही नहीं है, और कैन्ट (Kant) के अनुसार आकाश द्रष्टा और दृश्य दोनों है, और वह बाँटा और काटा नहीं जा सकता। इसी तरह सच्चा आत्मा या तत्त्ववस्तु, परम अनन्तता कभी काटी या बांटी नहीं जा सकती। किन्तु इस दुनिया के पदार्थों के सम्बन्ध में जब उसका ज़िक्र हम करते हैं, तब बुद्धि या किसी वस्तुसे संयुक्त तत्वकी तरह उसकी चर्चा करने में हम ठीक हैं, और अब वही तत्ववस्तु इस या उस पदार्थ से क्रिया और प्रतिक्रिया के रूप में जुड़ी हुई है। उदाहरण के लिये, इस हाथ का आकाश, इस पात्र के आकाश तक पहुँचता है,और दोनों एक हो जाते हैं। अब हाथ का आकाश और पात्र का आकाश एक हो गया। मूल में भी वह एक ही था, किन्तु अब तुम्हारे नेत्रों के लिये हाथ का आकाश और पात्र का आकाश एक हो गया।

इस प्रकार वेदान्त कहता है कि परमतत्व तो द्रष्टा को आश्रय दिये हुये वा द्रष्टा का आधार है, और जब वह तत्व दृश्य के आधार रूप परमतत्त्व से एक होता है, तब द्रष्टा और दृश्य एक हो जाते हैं। क्रिया और प्रतिक्रिया वास्तव में आत्मा में नहीं होती, किन्तु परिच्छिन्न-आत्मा में होती है। उदाहरण के लिये एक ओर से पानी की यह एक लहर आ रही है, दूसरी ओर से दूसरी आ रही है। एक लहर भी वैसा ही जल है जैसा कि दूसरी लहर, और

लड़ने पर भी दोनों पानी ही रहेंगी। उन में कोई अन्तर नहीं पड़ता-फिर भी लहरों में क्रिया और प्रतिक्रिया होती है। यहाँ एक लहर से परिमित जल की दूसरी लहर से परिमित जल से टक्कर होती है, और इस टक्कर से फेन का व्यापार प्रकट हो आता या घटित होता है। इसी तरह बुद्धि से परिमित परमतत्त्व जब पदार्थ से परिमित परमतत्व से टकराता है, तो इस दुनिया के गुण, धर्म और स्वभाव का व्यापार उत्पन्न हो जाता है। ठीक वैसे ही जैसे कि यह हाथ जब दूसरे हाथ से टकराता है, (इस में भी वही शक्ति है जो दूसरे हाथ में है), तो ध्वनि पैदा होती है, इस हाथ में भी वही ताकत है जैसी कि दूसरे में, और तथापि दोनों हाथ भिड़ते हैं।

परमतत्व बुद्धि और पदार्थ में वही है। जब बुद्धि या द्रष्टा का पदार्थ से संस्पर्श होता है, तब भी उनके पीछे वही परमतत्व आत्मा है। यह बिलकुल स्पष्ट नहीं हुआ कि इस दुनिया की सब वस्तुओं के पीछे वही एक परमतत्व है। यह एक कलम (लेखनी) है। इस कलम में कुछ गुण या धर्म और साथ ही परमतत्व भी है। आप जानते हैं कि इस आधार स्वरूप स्थित परमतत्व की मौजूदगी के अनुमान करने का हमारे पास एक अच्छा वा काफी कारण है, क्योंकि ये गुण आप ही आप नहीं उपज आते। बुद्धि पर क्रिया हुई, तब उस पर बुद्धि की प्रतिक्रिया से गुणों की उत्पत्ति हुई। यह एक कलम है। इसमें कुछ गुण हैं जिन्हें हम "क" कहेंगे, और इसमें आधार स्वरूप तत्व को हम "त" कहेंगे। कलम उन गुणों के समान है जिनसे वह कलम बनता है। वहां एक मेज़ है। मेज़ में वही गुण हैं

जिनसे वह मेज़ बनती है, अर्थात् "क म"+"त" (परम तत्व)। यहां आप प्रश्न कर सकते हैं कि इस "त" को हम वही पहिले वाला "त" क्यों माने लेते हैं। कहा जा सकता है कि इस कलम के गुणों के पीछे स्थित तत्व कोई दूसरा है, और मेज़ के गुणों के पीछे स्थित तत्व कोई दूसरा है। फिर यह भी कहा जा सकता है कि कलम के गुणों का विस्तार होने से पहिले किसी तत्व ने हमारी इंद्रियों पर क्रिया की होगी, और जिन गुणों से यह एक मेज़ बनी है, उनका विस्तार हमारे द्रष्टा से हुआ था, अर्थात् किसी दूसरे तत्वने, जिसे हम "त" कह लें, हमारी इंद्रियों पर क्रिया की होगी। किन्तु इस "त" को और दूसरे "त" को एक मानने का हमें कोई हक़ नहीं है। यह एक वाजा है। इसे हम "त" १ कहेंगे ताकि पहले के "त" से अलग रहे। यह "त" उससे भिन्न हो सकता है जो मेज़ या कलम के पीछे स्थित था। यहां मनुष्य, "त" २ है।

अब अफ़लातूँ की ग़लती पर ध्यान दीजिये। वह इन आधारस्वरूप तत्वों को विभिन्न २ मानता है जैसा कि वे हैं, और तुम ने भी उन्हें विभिन्न २ मान रक्खा है। इस युक्ति में एक चूक है। हम यह दिखा सकते हैं कि यह अनुमान ग़लत है। कलम के गुण और स्वभाव, उसका रंग, तौल, कोमलता, तथा दूसरे गुण, आप की बुद्धि या मन की प्रतिक्रिया के परिणाम थे। इस तरह यहां सब सिफतें आप की बुद्धि की प्रतिक्रिया का नतीजा हैं। ये सब स्वभाव या गुण प्रतिक्रिया के पीछे आते हैं, और हमने मान लिया है कि इस पेंसिल में परम तत्व इन गुणों या धर्मों के विस्तार से पहले होता है। इस तरह परम तत्व सब गुणों, सब स्वभावों, सब धर्मों से ऊपर रहता है। "त"१ और "त"२ भी सब गुणों या धर्मों से

ऊपर रहते हैं।

. तो फिर भेदों का क्या कारण है ? तनिक विचार करो। इस दुनिया के सारे भेदों का कारण केवल गुण हैं। खरिया मट्टी के इस टुकड़े और उस पेंसिल के गुणों की चर्चा किये बिना क्या आप दोनों में भेद कर सकते हैं ? आप कैसे जानते हैं कि खरिया मट्टी का यह टुकड़ा उस पेंसिल से भिन्न है ? केवल गुणों के द्वारा। यह खरिया सफेद है। यह एक गुण है। यह भुरभुरी है। यह भी एक गुण है। सारे भेदों के कारण गुण हैं। यदि तुम इस "त" को उस "त" से भिन्न बनाते हो, तो तुम भेदों की स्थापना करते हो, तुम भेदों का विस्तार करते हो, दूसरे शब्दों में, तुम इस परमतत्व को फिर गुणों के अधीन कर देते हो। आप देखते हैं कि भेदों के अधीन होने से, एक दूसरे से भिन्न होने से, वे सब गुणों के अधीन हैं, और यह गलती थी। उन (परम तत्वों) को गुणों से परे मान कर आप ने आरम्भ किया था, और उन्हें गुणों से युक्त मान कर आप इति कर रहे हो। यदि आप उनको विभिन्न और एक दूसरे से न्यारा मानते हैं, तो आप ज़बर्दस्त गलती करते हैं। उन्हें गुणों से, स्वभावों से, परे मान कर आप ने प्रारम्भ किया था, और अब गुणों तथा स्वाभावों के मध्य में उन्हें लाकर आप अपना ही खंडन करते हुए इसे समाप्त कर रहे हैं। यही गलती है।

आपको यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि इस पेंसिलमें आधार स्वरूप तत्व खड़ियाके उस टुकड़े में आधार स्वरूप तत्वसे भिन्न है। आपको यह कहने का कोई हक नहीं है कि मन वा द्रष्टा या बुद्धि में स्थित तत्व उस तत्व वस्तु से भिन्न है जो एक गऊ या बैल में अन्तःस्थ है। आप को यह

कहने का कोई हक नहीं है कि इस मेज़ में अन्तःस्थ आत्मा उस (आत्मा) से भिन्न है। वह एक है, वही अनन्तता, वही पूर्ण निर्विकार वा नित्य तत्ववस्तु है।

एक दृष्टान्त देकर इसे और स्पष्ट किया जा सकता है। यह एक सुन्दर सफेद दिवाल है। आप सब यहां बैठे हो। आप में से एक उस दिवाल पर सुन्दर परिलेख (चित्र—diagrams) रेखागणित के त्रिकोण,वृत्त वा चक्र, अंडाकृतियां इत्यादि खींच रहा है, दुसरा उसी दिवाल पर एक महासमर सम्बन्धी एक चित्र खींच रहा है, अन्य एक उसी दिवाल पर अपनी जोड़, मित्रों और सम्बन्धियों के चित्र खींच रहा है, दूसरा कुछ और ही खींच रहा है। इन सब चित्रों के पीछे वही एक ही आधार भूत तत्व है। इसी तरह जो सब चीज़ें आप इस दुनिया में देखते हो, उनके पीछे भी वही (एक ही) तत्व है। कल्पना करो कि यहाँ आप एक घोड़ा देखते हैं, वहाँ एक गौ, यहां एक कुत्ता, वहां एक हाथी, और वहां एक आदमी देखते हैं। ये सब तसवीरें एक ही और उसी पूर्ण 'त' पर,उस दृष्टान्त वाले 'त' पर,उसी सफेद दिवाल पर बनी हुई हैं। इस प्रकार से वही आत्मा, एक ही अनन्त राम, हरेक और सब क पीछे स्थित है। स्वप्न में आप एक बैल देखते हो, फिर एक कुत्ता, उसके बाद एक मनुष्य, फिर एक औरत। किन्तु आप जानते हो कि आप के स्वप्नों में बैल, कुत्ता, आदमी, और प्रत्येक वस्तु, एक ही और उसी पूर्ण तत्व,सच्ची आत्मा पर (खिंचे) सब चित्र हैं। जागने पर आप जानते हो कि घोड़ा,पहाड़, या नदी आदि आप के स्वप्न की वस्तुएँ कहीं नहीं हैं।

जिन गुणोंसे दुनिया बनती है, उनकी बाबत क्या बात है ?

इन्द्रिय-गोचर दुनिया इन गुणों से युक्त है, और गुण परम तत्व पर निर्भर हैं। इस स्थल पर एक बहुत ही सूक्ष्म बात है जो आप अभी नहीं समझ सकोगे, किन्तु बाद के कुछ व्याख्यानों में आप शायद पूरी तौर पर उसे समझ लोगे। ये सब गुण परमतत्व पर निर्भर करते हैं। इन गुणों के अनुसार, परम तत्व में भी एक गुण है, अर्थात् इन गुणों का अवलम्बी, पोषक वा आधार होने का गुण। परमतत्व सब गुणों को सहारा देता है। यदि ऐसा है तो परमतत्व परम नहीं है, क्योंकि परमतत्व में इन सब गुणों को सहारा देने का कम से कम एक गुण तो है। तो फिर हम कैसे कह सकते हैं कि परम तत्व पूर्ण है? असली अनुभव से हम ऐसा कहते हैं। जिस तरह आप अपने निजी अनुभव के प्रमाण पर कहते हो कि यह दुनिया वास्तविक है, ठीक उसी तरह उच्चतर निजी अनुभव के प्रमाण पर हम कहते हैं कि जब परमतत्व की उपलब्धि हो जाती है, तब ये सब गुण, यह सब काल,और देश गायब हो जाते हैं। इस प्रकार परम तत्व की दृष्टिविन्दु से इन गुणों का अस्तित्व कभी नहीं था, किन्तु गुणों की दृष्टि से वे अधिष्ठान रूप परम तत्व पर निर्भर करते हैं। यह एक बड़ी समस्या हल करने को है। *यह माया की समस्या कहलाती* है। वास्तव में परमतत्व परम ही है, सब गुणों से परे है, किन्तु ये गुण अपने स्थितिविन्दु से परमतत्व पर निर्भर करते हैं। यह गुत्थी सुलझने पर संसार की सब गुत्थियां सुलझ जांयगी।

ये केवल कल्पना के विषय नहीं हैं। यूरोपीय दार्शनिक इन्हें केवल कल्पना के विषय बनाते हैं। किन्तु भारतीय

तत्वज्ञानियों का यह हाल नहीं है। कोई कल्पना-सिद्ध विषय उनके लिये तब तक अर्ध सिद्ध ही बना रहता है, जब तक कि अनुभव से वह प्रमाणित नहीं हो जाता, जब तक उस की उपलब्धि और प्रयोग नहीं हो जाता। बुद्धि से सुनने पर यह विषय अति मीठा है, किन्तु जब एक बार इस का अनुभव किया जाय, तब तो यह माधुरी और आनन्द का सार है। यह अनुभव करने के योग्य है। यदि आप इस कल्पना के अनुसार जीवन निर्वाह करो—कि, आप वही एक अनन्त "त" हो, जो इस विश्व के सब पदार्थों या सत्ताओं के पीछे (आधार रूप से) स्थित है, आप परम तत्व हो—तब आप देह से परे हो जाते हो, मनसे परे होते हो। यह शरीर अधिष्ठान(द्रष्टा) नहीं है। यह तो केवल एक पदार्थ है. जिस की उत्पत्ति एक ओर की लहर से दूसरी ओर की लहर की टक्कर से हुई। है आप केवल देहरूपी फेन नहीं हो। आप तो परमतत्व हो, जिस में यह सम्पूर्ण संसार, विश्व का सम्पूर्ण व्यापार, लहरें या भँवर हैं। इस का अनुभव करो, और परम स्वतंत्र हो जाओ। क्या यह आश्चर्यों का आश्चर्य नहीं है कि आप जो वास्तविक सत्य, वास्तविक परम स्वरूप हो, इस का अनुभव नहीं करते? कैसा शुभ समाचार है, कैसी उत्तम वार्ता है कि आप वह परमतत्व, असली "त" हो। इस का अनुभव करो और स्वतंत्र हो जाओ।

Let that be your state,

The body dissolved is cast to winds,

While Death, Infinity me enshrine;

All ears my ears, all eyes my eyes,

All hands my hands, all minds my minds,
I swallowed up death, all difference I drank up,
How sweet and strong and good I find.

तुम्हारी यह दशा हो,
' देह विनष्ट होने पर पवन के हवाले हो गई,
और मैं मृत्यु, अनन्तता का मन्दिर बना हुआ हूं;
सब कान मेरे कान, सब नेत्र मेरे नेत्र,
सब हाथ मेरे हाथ, सब मन मेरे मन।
मैं ने मौत निगल ली, सब भेद मैं पी गया,
कैसा तरो ताज़ा, अच्छा, और बलवान मैं हो गया "।

वस्तु-स्वातंत्र्यवाद और कल्पनावाद वा दृष्टि-सृष्टि वाद।

सोमवार ४ अप्रैल १९०४ का भाषण।

..... जिन लोगों का विश्वास है कि कल्पनायें वा ख्याल सत्य हैं, वे कहते हैं कि कल्पनावाद एक सत्यता वा तथ्य है, और उनके पास अपने पक्ष के प्रमाण हैं। उदाहरण के लिये, विना बोधकर्त्ता के दिवाल का बोध कैसे हो सकता है ? उनका कथन है कि दिवाल में कोई असलियत नहीं है, परन्तु कल्पना ने दिवाल की सृष्टि की, यदि कोई मनुष्य दूसरी ओर मुग्ध (hypnotized हिपनोटइज़ूड्) हो जाय, तो वह दिवाल को कुछ और ही देखेगा। जिस मनुष्य को मैं ने मुग्ध (अपने ख्याल के विवश) कर लिया है, उससे मैं यदि कहूं कि यह धरातल झील है, तो वह तुरन्त इसमें मछलियां मारने लगेगा। किन्तु यहीं पर वस्तु-स्वातंत्र्यवादी आता है और कहता है कि दिवाल बिलकुल असली है, तुम्हारी कल्पना के वह अधीन नहीं। तुम इसे देखते हो, तुम इसे बोध करते हो, तुम इसे सुन सकते हो, और यदि तुम्हारी सूंघने की शक्ति तीव्र होती, तो तुम इसे सूंघ भी सकते, और यदि तुम इसे खाओ तो तुम्हारा पेट तुम्हें बतावेगा कि यह ज़रूर एक वास्तिविक पदार्थ है। इस तरह तुम देखते हो कि अपने पक्ष में उसके पास प्रचुर दलीलें हैं। किन्तु मैं आप से कहना चाहता हूं कि कोई पदार्थ बनाने के लिये संकल्प और वस्तु दोनों की ज़रूरत

होती है। माना कि मुग्ध मनुष्य के लिये यह दिवाल से कोई भिन्न वस्तु है, फिर भी उसे (भिन्न वस्तु) सुझाने के लिये वहां कोई वस्तु तो अवश्य होना ही चाहिए, चाहे हम उसे घोड़ा कहें या झील या कुछ और। अधिष्ठान या द्रष्टा और दृश्य इन दो की ज़रूरत पड़ती है।

एक वार भारतवर्ष में दो मनुष्य झगड़ रहे थे। वे दरवेश कहलाते थे। एक का नाम था श्रीयुत लकड़ी (Wood), और दूसरे का नाम था श्रीयुत कुल्हाड़ी (Axe)। श्रीयुत कुल्हाड़ी कुपित होकर श्री लकड़ी से बोले "मैं तुम्हारे टुकड़े टुकड़े कर डालूंगा"। श्री लकड़ी ने जवाब दिया, "किन्तु, महाशय जी! तुम्हारे पीछे मेरा होना ज़रूरी है, अन्यथा तुम कुछ नहीं कर सकते।" आप देखते हैं कि कुल्हाड़ी का वेंट लकड़ी का बना होता है। और इसी तरह कल्पनावाद और वस्तु-स्वातंत्र्यवाद साथ साथ हैं, वे एक दूसरे के आश्रित हैं।

मैं बलुआ-कागज़ (sand paper) पर एक दियासलाई रगड़ता हूँ, और लपट पैदा होती है। लपट न तो दियासलाई में थी और न बलुआ-कागज में थी। किन्तु दोनों का संसर्ग होने से लौ पैदा हुई। मैं अपना एक हाथ दूसरे हाथ पर पटकता हूँ, और एक आवाज़ पैदा होती है। आवाज़ न तो दहने हाथ में है और न बांये हाथ में है, किन्तु दोनों के एक होने का नतीजा है। आत्मा दोनों हाथों में वही है। यहां पर मैं तुमसे कोवे की बात कहना चाहता हूँ। कहा जाता है कि कौवे के दो नेत्र-कूप (नैन कटोरे) होते हैं, किन्तु नेत्रपिंड (आँख का तारा) एक ही होता है, और जब वह दहनी ओर देखता है, तब वह उधर के कूप में नेत्र को ले जाता है; और

जब बांई ओर उसे देखना होता है, तब वह उधर के कटोरे कूप में नेत्र को ले जाता है। अब आँख एक ही है, परन्तु वह विभिन्न स्थानों में फेरी जाती है। दो बड़ी लहरों का समागम होता है, और एक श्वेत शिखा हमें मिलती है। दहनी लहर में और बाईं लहर में जल वही है, और जब उनका समागम होता है तब सफेद शिखा हमारे हाथ आती है। एक बच्चा एक जनक से नहीं पैदा होता, माता और पिता दोनों से पैदा होता है।

अब हम अधिकरण-निष्ठ (आत्मगत) को द्रष्टा और पदार्थ-निष्ठ (अनात्मगत) को दृश्य कहेंगे। और हम सर्वत्र देखते हैं कि यही दो हैं जो अन्योन्याश्रित हैं। और जो इस प्रकार एकत्र होने पर गोचर-पदार्थ (नाम-रूप) की उत्पत्ति करते हैं जिसे हम देखते हैं। दोनों में से एक कोई भी अकेला गोचर-वस्तु की उत्पत्ति नहीं करता, और इस तरह यह साफ है कि गोचर-वस्तु की व्याख्या के लिये संकल्प-वादी और वस्तुवादी दोनों को एकत्र होना पड़ेगा, क्योंकि संभवतः कोई भी इसे अकेला नहीं कर सकता।

भारतवर्ष में कुछ घरों में बहुत दर्पण होते हैं, वास्तव में दिवालें और छतें दर्पणों से जड़ी होती हैं। एक बार एक कुत्ता ऐसे एक घर में आ घुसा, और अपने सब ओर उसने सैकड़ों कुत्ते देखे। जब उसने ऊपर की ओर देखा, तब अपने शिर पर कुत्तों को देखा, और इस तरह बहुत डर कर उसने उछलना शुरू किया। तुरन्त ही सब सैकड़ों कुत्ते भी उछलने लगे। तब वह भौंकने और इधर उधर दौड़ने लगा। उन कुत्तों ने भी अपने मुँह पसारे और दौड़ने लगे। यही ढंग वह करता रहा, और अन्त में वह इतना थक गया कि वहीं गिर

पड़ा, दौड़ धूप छोड़ दी और देह भी छोड़ दी। मकानके मालिक ने आकर उस कुत्ते की लोथ उठवाई। अब इस कमरे में एक रूपवान युवा युवराज ने प्रवेश किया, और सब शीशों में अपने को खूब सराहा। पहले उसने अपने बालों की तारीफ की, तब अपने मुख तथा अन्य अंगुलियों की, तब अपनी पोशाक की, और भी इसी तरह और और की। वह इन सब तसवीरों से बहुत खुश हुआ और जानता था कि ये सैकड़ों मनुष्य वही खुद है। केवल तभी हमें चैन मिलती है जब हम जान लेते हैं कि केवल एक ही आत्मा वा अपना आप है, और अनेक नामों के तले हम जो सब शकलें और रूप देखते हैं, ये वास्तव में हमारा ही आत्मा वा अपना आप हैं। अन्यथा उक्त कुत्ते के समान दशा होती है। हम को डर लगता है कि यह हमको धोखा देगा, वह हमारी हानि करेगा, दूसरा हम से कोई चीज़ ले लेगा, और मूर्तियों वा रूपों के विरुद्ध निरन्तर एक झगड़ा होता रहता है, क्योंकि इन्हें हम विभिन्न समझते हैं। किन्तु सत्य के अनुभव होते ही हम राजकुमार की नाँई सावधान हो जाते हैं। हम जानते हैं कि आत्मा या अपने स्वरूप वा अपने आप को कोई धोखा नहीं दे सकता, क्योंकि वह निर्विकार और स्वतंत्र है। जब तक हम कुत्ते की तरह इधर उधर उछलते रहते हैं, तब तक हम निरानिर ऊपरी हिस्से पर जीते हैं, किन्तु जब हमें आत्मा (अपने स्वरूप) का अनुभव हो जाता है, तब हम सतह के नीचे पूर्ण सत्य के साम्राज्य में गोता लगाते हैं।

कल्पना करो कि स्वप्न में अधिष्ठान या द्रष्टा पहाड़ पर चढ़ा, और वहां एक व्याघ्र उसे मिला, जिसने उसे नोच कर

टूक टूक कर दिया; अथवा वह दलदलों में फंस गया, जिनसे निकलना कठिन हो गया; या गङ्गा ने उसे दबोच लिया। अब द्रष्टा यदि वास्तविक और सत्य है, तो वह अनुभव करेगा कि स्वप्न की बातें कुछ भी नहीं हैं, और उसे कुछ भी व्यथा न होगी। व्याघ्र द्वारा टुकड़े टुकड़े नोचा जाने पर वह रोवे और चीखेगा नहीं, न दलदल की गहराइ से वह डरेगा। किन्तु हम देखते हैं कि यह एक ख़याल मात्र है और असलियत नहीं है। अब, इस स्वप्न की वस्तुओं को सत्य मान लो। यदि ऐसा होता; तो द्रष्टा के सोने के बिछौने पर पानी की बढ़िया आ गई होती, सिंह वस्तुतः द्रष्टा को नष्ट कर देता, इत्यादि। किन्तु हम देखते हैं कि ऐसा तो होता नहीं, और न दृश्य भी सत्य होता है। दोनों मिल कर स्वप्न की रचना करते हैं, किन्तु सत्य कोई भी नहीं है।

मेज़	=	"क म"	+	"त"
तख्ता	=	'क त"	+	"त"
गुलाब	=	"क ग"	+	"त"

मेज़ के गुण और अव्यक्त वा अज्ञात का योग = बराबर है मेज़ के।

तख्ते के गुण और अव्यक्त वा अज्ञात का योग = बराबर है तख्ते के।

गुलाब के गुण और अव्यक्त वा अज्ञात का योग = बराबर है गुलाब के।

गुलाब लाल है, उस में पँखड़ियां आदि हैं, और अव्यक्त या अज्ञात के योग से वह गुलाब हुआ। अव्यक्त वा अज्ञात सब में वही है, और वही स्वरूप वा आत्मा है, जो उन में वास्तविकता है।
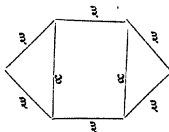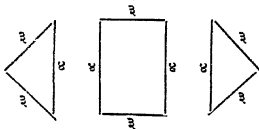
ये दो समद्विभुज त्रिकोण हैं।

यह एक समकोण है।

अब इन आकारों को एक कर देनेसे एक षट्भुज (छकोना) आकार बनता है। जिन आकारों को हम ने मिलाया था उन में से किसी का भी वह (छकोना) आकार नहीं है। समद्विभुज त्रिकोणों में और समकोण में सब बाजू बराबर नहीं थे, किन्तु छकोण के सब पार्श्व (भुजायें) समान हैं। यहां आकार हम ने इकट्ठे मिला दिये हैं, जो सब प्रकार से एक नितान्त नये ही आकार की उत्पत्ति करते हैं।

इसी तरह हमें ह२ अ(H_2O)प्राप्त है। अब "आक्सीजन" (oxygen) और "हाइड्रोजन" (hydrogen) की सांस

लेना सहज है, परन्तु वे दोनों मिल कर पानी पैदा करते हैं, जो बिलकुल भिन्न वस्तु है। "हाइड्रोज़न" और "आक्सीजन" जल उठने वाले द्रव्य हैं, किन्तु जल के संबन्ध में यह बात ठीक नहीं है।

इस (उदाहरण) से व्यक्त (नाम रूप) संसार की व्याख्या होती है, और यह भी ज़ाहिर होता है कि न तो द्रष्टा और न दृश्य (पदार्थ) सत्य है।

वेदान्त कहता है कि यह सब केवल शब्दों का खेल है। शब्दों पर झगड़ने से क्या लाभ? वास्तव में एक ही आत्मा (तत्व) है जो हम हैं. उसके सिवाय कुछ नहीं है, और, चूंकि आत्मा से इतर कुछ नहीं है, इस लिये तुम युक्ति पूर्वक नहीं कह सकते कि तुम एक अंश हो। बल्कि इस से यह अनिवार्य निचोड़ निकलता है कि तुम पूर्ण स्वरूप वा आत्मा हो। सत्य में कोई विभाग नहीं है। अब भी तुम सत्य स्वरूप हो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

वेदान्त पर कुछ प्रश्नों के उत्तर।

अकेडेमी आफ़ सार्देनेज़ में २३ दिसम्बर १९०२ को दिया हुआ व्याख्यान।

किसी विशेष विषय पर आज कोई नियमित व्याख्यान न होगा। अनेक तरह के प्रश्न लेकर अनेक लोग राम के पास आते रहते हैं। कभी २ तो ये प्रश्न विलक्षण ही होते हैं। उन में से कुछ प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर आज दिया जायगा। आप में से किसी को अथवा अमेरिकाके किसी भागसे किसी व्यक्ति को इस विषय पर कोई प्रश्न करना हो, तो कागज़ के एक टुकड़े पर वह अपना प्रश्न लिख कर राम को भेज सकता है। इस भवन (hall) में अथवा किसी दूसरे स्थान में जहां राम को भाषण करने का अवसर मिलेगा, उस व्यक्ति के प्रश्न का उत्तर विस्तार पूर्वक दिया जायगा।

इन प्रश्नों को आरम्भ करने के पहले, लोगों के मनों में संभवतः उपस्थित सब प्रकार के प्रश्नों के संबंध में एक सामान्य घोषणा कर देना आवश्यक है। आप जानते हैं कि भारतीय तत्वज्ञानियों का ढंग यूरोपीय या अमेरिकन तत्वज्ञानियों के ढँग से नितान्त निराला है। भारतीय तत्वज्ञानी जब किसी विषय को उठाते हैं, तो पहले उसकी व्याख्या करते हैं, तब सब प्रकार के प्रश्न किये जाते हैं, और वे उनका उत्तर देते हैं। राम को स्वयं इन सब अवस्थाओं में हो कर गुज़रना पड़ा है। राम के सामने वे सब सवाल थे जो किसी के भी सामने हो सकते हैं; ऐसे सवालों और

मिथ्या शंकाओं का एक सागर है। उनमें से कुछ तो राम के प्रश्न उस समय के हैं जब कि वह ५ पांच साल का था। उनमें से कुछ सवाल ऐसे हैं जो उसे उसकी १५ पन्द्रह वर्ष की उम्र (आयु) में हैरान करते थे। दूसरे सवाल ऐसे हैं जिन पर उस का ध्यान २५ साल की उम्र से [illegible] था।

इन प्रश्नों के संबंध में एक और बात बयान करनी है। इन में से कुछ का संबंध तो दार्शनिक वृत्ति के विकास की अत्यन्त प्रारम्भक अवस्थाओं से है। दूसरों का सम्बन्ध धार्मिक विकास की दूसरी (माध्यमिक) अवस्था से है। बाकी का सम्बन्ध किसी दूसरी अवस्था से है। यहां एक मनुष्य आता है जो तुम से रेखागणित (Euclid) की प्रथम पुस्तक की ४७वीं शक्ल समझना चाहता है। जो मनुष्य ४६वीं, ४५वीं, या पहली शक्ल नहीं समझा है, और रेखागणित के सूत्रों (axioms) तथा मानी हुई बातों (अवाध्योप्रक्रम = postulates) से भी अपरिचित है, उसको यदि आप तुरन्त ४७ वीं शक्ल समझाना शुरु कर दें तो उसको संतुष्ट कर सकना कैसे आपके लिये संभव है? यदि आप काम उठा ही लें और समझाना शुरू कर दें, तो आरम्भ में ही आप को ४६वीं शक्ल का प्रयोग करना होगा, फिर समचतुष्कोण (square) की व्याख्या करना पड़ेगी; और फिर ४२ वीं शक्ल का प्रयोग करना पड़ेगा, इत्यादि। उन्हें सिद्ध करने के लिये आप को १६वीं, ३२वीं आदि शक्लों की सहायता लेना पड़ेगी। इस प्रकार तुम्हें पहली शक्ल पर लौटना पड़ेगा और फिर तुम्हें लौट कर स्वतः सिद्ध सूत्रों (axioms) तथा सिद्ध पदों (postulates) पर आना पड़ेगा। हरेक बात गड़बड़ हालत में हो जाती है। कुछ

भी सिद्ध नहीं होता।

गड़बड़ हालत में किसी विज्ञान पर आक्रमण नहीं करना चाहिये। उस पर नियमबद्ध, युक्ति पूर्ण तरीके से आक्रमण करना उचित है। यह वेदान्त-दर्शन, यह वेदान्त-मत एक धर्म है और साथ ही इस के विज्ञान भी है। यूरोप में आप विज्ञान और धर्म में विवाद पाते हो, किन्तु यह शिक्षा, जो राम आप को देता है, उनका समन्वय कर देती है। वास्तव में यह विद्या तत्वज्ञान, विज्ञान, और धर्म का समन्वय कर देती है।

यह विज्ञानों का विज्ञान है, इस लिये इस पर क्रमपूर्वक, विधि और नियम से विचार करना चाहिये। यत्किञ्चित व्याख्यान जो आप के श्रवण गोचर हुए हैं, इन्हों ने इस तत्वज्ञान में बिलकुल प्रवेश तक नहीं किया। वेदान्त-दर्शन पर ऐसा एक भी व्याख्यान नहीं दिया गया है। केवल आस पास के प्रश्नों पर विचार किया गया है। प्रारम्भिक या प्रस्तावनात्मक व्याख्यान दिये गये हैं। इस अद्भुत विज्ञान और धर्म की स्पष्ट व्याख्या आप के सामने करने का समय यदि राम को मिला तो आपके सब संदेह, सब प्रश्न, आपही आप दब जायँगे।

कुछ लोग बहुत ही अधीर हैं, और अपने प्रश्नों का उत्तर चाहते हैं। बहुत अच्छा। उनमें से कुछ (प्रश्नों) को हम उठावेंगे। प्रश्न बड़े ही विलक्षण हैं।

कल की रात या परसों रात को एक मनुष्य ने आकर यह प्रश्न किया, "महाशय ! आप क्या सिखाते हैं"? "क्या आप के आत्मा है?" "क्या आप आत्मा के अस्तित्व की शिक्षा देते हैं?" राम ने कहा, "नहीं, मेरे आत्मा नहीं है।" वह चकित हो गया।

"अरे, यह शैतानी धर्म है। उस के आत्मा ही नहीं है"। राम के उत्तर "मेरे आत्मा नहीं है" का क्या मतलब है? अमेरिका और यूरोप में धर्म क्या है? बैठकों को सजाने की वह एक वस्तु है। यह मेरी स्त्री, मेरे बच्चे, अलौकिक भव्य भवन हैं, यह मेरी सम्पति और बंक में इतने रुपये हैं। यह सब तो मेरे पास हैं, पर मुझे कुछ और चाहिये। संचय के इस भाव से प्रेरित होकर, बटोरने, जमा करने और ग्रहण करने के इस विचार के फेर में पड़ कर वे एक वस्तु और संचय करते, ग्रहण करते और बटोरते हैं। सम्बन्धियों के चित्रों के बिना जैसे कमरे की अच्छी सजावट नहीं हो सकती है, वैसे ही बिना थोड़े से धर्म के मुझे संतोष नहीं होसकता कि मैं धनी पुरुष हूं। और चीज़ों के साथ २ मेरे पास धर्म भी होना चाहिये, किन्तु पहले और चीज़ें हों और यह सब के पीछे।

राम को आप क्षमा करेंगे यदि उसके मुख से ऐसे शब्द निकल रहे हैं, जो कुछ लोगों को भले न लगेंगे। राम व्यक्तियों से सत्य का आदर अधिक करता है, और सत्य का आदर करके वह आप का वास्तविक आदर करता है, क्योंकि उसके मतानुसार आप सत्य स्वरूप हो, न कि यह मिथ्या आत्मा या शरीर। सत्य ऐसे बयान करने को राम को लाचार करता है,। साधारण प्रार्थनाओं में, जो इस देश में होती हैं, ईश्वर का क्या उपयोग किया जाता है? लोग ईश्वर को कैसे पहुँचते हैं? जब बच्चा बीमार पड़ता है, जब सम्पति को हानि पहुँचने-वाली होती है, जब शरीर को पीड़ा होने को होती है, तब वे ईश्वर की सेवा में पहुँचते हैं, अपनी आंखें मीचते वा

बिछाते हैं, और हाथ ऊपर उठाते हैं:'– 'ऐ ईश्वर, जो द्यौ वा स्वर्गमें है,ऐ ईश्वर,जो आसमान पर है"—ईश्वर पर उन्हें दया भी नहीं आती कि बादलों में रहने से कहीं उसे सर्दी न होजाय—"हे ऐइवर! जो वहां है,तू मुझ पर रहम कर और मेरी जायदाद की रक्षा कर, मेरा शरीर चंगा कर दे, मेरा बच्चा स्वस्थ हो जाय।" क्या यही धर्म है? यहां ईश्वर पर केवल इसी उद्देश्य से विश्वास किया जाता है कि जब कभी घर में कोई दिक्कत हो, जब घर कुछ गन्दा हो, जब घर बेमुरम्मत हो, तब वह गरीब ईश्वर आकाश से नीचे उतरे और आप के घर बुहारी दे। ईश्वर का क्या यही उपयोग नहीं होता? यहां धर्म क्या केवल तुच्छ अभिप्रायों के लिये नहीं रक्खा जाता? क्या यही धर्म है? यहां मुख्य वस्तु है शरीर, क्षुद्र आत्मा, स्त्री और बच्चे। ईश्वर तो केवल कमरों को साफ सुथरा करने के निमित्त स्वर्ग से यहां लाने के लिये है। क्या वस्तुतः ऐसा नहीं है?

इन शिक्षाओं, अर्थात् इस वेदान्त की दृष्टि से मैं कहूँगा, कि सम्पूर्ण भारत की तो नहीं, किन्तु कम से कम वास्तविक धार्मिक पुरुषों की दशा कुछ और ही है।

यहां भारतमें ईसा की वह शिक्षा–"वैकुण्ठके साम्राज्यको प्राप्त करो और अन्य प्रत्येक वस्तु तुम्हें मिल जायगी"–जिसे लोग बहुत ही शिथिलतासे सुनते हैं,और जो अत्यन्त बलपूर्वक बड़ी ताकीद से दीजाती है, इसका अर्थ है, शरीर, मन, संबन्ध, सम्पत्ति, संसार, यह सब कुछ प्यारे के चरणों में समर्पित हैं। विशाल संसार घर होजाता है, और भलाई करना धर्म हो जाता है। इस भांति एक आवश्यक वस्तु सर्वे सर्वा बन जाती है, और दूसरी सब चीज़ें सहायक या

परदेश की चीज़ें समझी जाती हैं। वहां घर में परमेश्वर का अनुभव किया जाता है। ये बाहरी घर केवल सरायों या होटलों के तुल्य हैं। इन लोगों को अपनी स्त्रियों और बच्चों की ज़रूरतों की ओर भी ध्यान देना पड़ता है। किन्तु ये उनकी असली क़ीमत जानते हैं। "तुम्हारे आत्मा है?" इस प्रश्न का उत्तर देखिये। यह एक अप्रासंगिक प्रश्न है। मैं देह है। तब वह कहता है, "तुम्हारे आत्मा है?" राम कहता है " मैं आत्मा हूँ। मैं वह हूँ। " "तुम्हारे आत्मा है? यह कहना कितना निरर्थक है, मानों मैं शरीर हूँ, और आत्मा मेरी सम्पति है। मैं आत्मा हूँ। मेरा एक शरीर है, और मेरी सारी दुनिया है।

दूसरे मनुष्य ने राम से यह सवाल किया, "तुम ईश्वर में विश्वास करते हो?" राम कहता है, "मैं ईश्वर को जानता हूँ"। विश्वास हम उस वस्तु में करते हैं जिसे हम नहीं जानते होते और जो हमपर केवल बलात् लादी जाती है। ईश्वर में विश्वास करने का अर्थ क्या है? आप उसके बारे में क्या जानते हैं? "मैं परमेश्वर को जानता हूँ। मैं वह हूँ, मैं वह हूँ। तब वह कहता है, "ईश्वर तुम्हारे अन्दर है।" राम कहता है,देह और दुनिया उसके भीतर है। मैं परमेश्वर हूँ; इसी से सम्पूर्ण भेद पड़ता है। यहाँ जब कोई मनुष्य मरता है, तब लोग कहते हैं, उसने प्रेत (भूत) त्याग दिया। भारतवासी कहते हैं, उसने शरीर त्याग दिया। दो विभिन्न दृष्टिविन्दुओंका यह दृष्टान्त है। उसने प्रेत(भूत) त्याग दिया; मानों उसका वास्तविक आत्मा शरीर था, और प्रेत या भूत कोई टंकी हुई वस्तु थी; मानों उसका आत्मा शरीर था, और भूत या प्रेत कोई वाह्य चीज़ थी। हिन्दुस्थानी कहते

हैं, मैं वह हूँ, और मैं देह छोड़ता हूँ। जिस तरह मैं कपड़े बदलता हूँ, ठीक वैसे ही शरीर त्यागता हूँ।

यह एक दूसरा प्रश्न है। "यदि ईश्वर ही सर्व सर्वा है, तो संसार में इतना संकट और क्लेश क्यों है?" आप जानते हैं कि वेदान्त कहता है कि परमेश्वर सब कुछ है, परमेश्वर सब में सब है, तुम परमेश्वर हो, मैं परमेश्वर हूँ। लोग पूछते हैं क्या तुम ईश्वर का एक अंश हो? नहीं, नहीं, परमेश्वर के विभाग नहीं किये जा सकते, परमेश्वर चीर कर अलग नहीं किया जा सकता। तुम परमेश्वर का कोई अंश नहीं हो। यदि परमेश्वर अनन्त है, तो तुम पूर्ण परमेश्वर हो, न कि परमेश्वर का एक अंश।

अब प्रश्न है, यदि ईश्वर सब में सब है, तो एक शरीर में वह अपने को क्लेश की दशा में और दूसरे शरीर में गरीबी की दशा में क्यों डालता है? वह भारतवर्ष में महामारी और गरीबी, और अमेरिका में राजनैतिक स्वाधीनता क्यों लाता है? परमेश्वर एक मनुष्य को लाखों रुपये का अधिकारी और दूसरे को गरीब तथा भूखों-मरता क्यों बनाता है? वह ऐसा क्यों करता है? वह कैसा अन्यायी है? प्रश्नकर्ता के समाधान करने के प्रयत्न इस देश में भी और भारतवर्ष में भी किये जाते हैं, और अधिकांश लोग आश्रय लेते हैं कर्मवाद के सिद्धान्त का, कारण और परिणाम के सिद्धान्त का, इस सिद्धान्त का कि अपने भाग्य का मनुष्य आपही विधाता है, कि प्रत्येक मनुष्य अपनी परिस्थिति और इर्द गिर्द की सृष्टि अपनी ही मर्ज़ी से रचता है, और इस भांति ईश्वर न्यायी है। लोग अपना भाग्य आप बनाते हैं, अपने प्रारब्ध की सृष्टि आप ही रचते हैं। कर्मवाद के सिद्धान्त में प्रवेश

करने की ज़रूरत राम को नहीं है। कारण और कार्य का यह मत भारत से निकला है, और वेदान्त इसे मानता है। किन्तु इसका सम्बन्ध केवल प्रत्यक्ष विश्व से है,इसका संबंध केवल दृश्य संसार से है। प्रश्नके मूल तक यह नहीं पहुंचता। कर्मवाद के सिद्धान्तानुसार, जिससे आवागमन की व्याख्या होती है, तुम्हारी वर्तमान अवस्था तुम्हारी भूत आकांक्षाओं और कर्मों का फल है। इस प्रकार जिस परिस्थिति, जिस हालतमें तुम हो,जो कुछ तुम्हारा भाग्य या प्रारब्ध है, उसकी रचना तुम्हारी भूत वासनाओं और कर्मों ने की है। यदि तुम इसकी परीक्षा करो तो तुम देखोगे कि यह मत केवल कठिनता को स्थानान्तरित कर देता है। प्रश्न का पूरा उत्तर यह नहीं देता। राम इस मत का खंडन या विरोध नहीं करेगा। राम इसे पसन्द करता है और इसका अनुमोदन करता है। किन्तु वह सवाल का दूसरा रूख, दूसरा पहलू लाना चाहता है जिसकी लोग अमेरिका में नितान्त अवहेला करते हैं, अथवा बिलकुल अवहेला नहीं करते हैं, किन्तु पिछाड़ में रखते हैं।

कर्म के इस सिद्धान्त के अनुसार पिछले कर्मों ने तुम्हारी वर्तमान अवस्थाओं में भेद पैदा किया है। इस से यह बात निकलती है कि तुम्हारे गत जन्मों में भी,तुम्हारे गत जीवनोंमें तुम्हारे कर्मों,आकांक्षाओं और सनकों (whims) में अन्तर था। कुछ तो ऐसे थे जो बीमार थे, कुछ गरीब थे, और कुछ धनी थे। तुम्हारे गत जीवन में इन अन्तरों का क्या कारण था? उत्तर है कि तुम्हारे गत जीवन की अवस्थाओं में भेदका कारण उससे भी पूर्ववर्ती जविनके वैसे ही अन्तर थे। और इस जीवनसे पूर्वके तीसरे जीवनमें भेदों का कारण

क्या था ? उस जीवन से पूर्ववर्ती जीवन के भेद उनका कारण थे। यह सिद्धान्त कठिनता को दस लाख गुना अधिक पेचीदा बना देता है. क्योंकि इस मत के अनुसार, हम देखते हैं कि तुम्हारे सब गत जीवनों में तुम्हारे सब गत जन्मों में चाहे पीछे नित्यता तक भी,चाहे आदि तक भी, (यदि कोई आदि हो) प्रभेद हैं। विभिन्नता और विरोध सब कहीं है। अब प्रश्न का जवाब तो नहीं हुआ, वह केवल अधिक पेचीदा हो गया है। अब और भी अधिक बल से सवाल उठता है, और उसका यह रूप है। यह क्या बात है कि परमेश्वर ने अनादि काल से यह प्रभेद कायम रक्खा ? यह कैसी बात है कि परमेश्वर ने अनादि काल से एक स्थान में तो अपने को धनी बनाया और दूसरे स्थान में निर्धन ? उसने एक स्थान में अपने को रोगी और दूसरे स्थान में बिलकुल स्वस्थ क्यों बनाया ? यह कितना अनुचित है ! यह प्रभेद न्याय-संगत कैसे है ? वेदान्त कहता है यह प्रश्न मुझे तुम से कहना था, न कि तुम्हें वेदान्त से। यह वह सवाल है जिसका जवाब तुम्हें देना चाहिये। वेदान्त पर उत्तरदायित्व नहीं है। वह एकता में, अभिन्नता में विश्वास करता है, और साथ ही इस प्रत्यक्ष अनेकता का भी समाधान करता है।

उदाहरण के लिये एक ज़ालिम था, और उसके सामने ५ भिन्न २ मनुष्य थे, जो उससे भी विभिन्न थे, वह मनुष्य ईश्वर के स्थान में था और वे लोग उसके जीव, भृत्य, गुलाम थे। और इस मनुष्य ने यदि एक गुलाम को कारागार में, और दूसरे को एक मनोरथ बाग़ में, और तीसरे को एक भव्य महल में, और चौथे को कपड़े पहनने

के कमरे में, और अन्तिम (पाँचवे) मनुष्य को हर समय एक भारी बोझ के नीचे रखा तथा उसकी छाती पर विशाल हिमालय लाद दिया, और उसको हर घड़ी उसकी छाती पर रक्खा, तो आप ऐसे मालिक को क्या कहेंगे? निर्दयी, अन्यायी स्वामी! यदि परमेश्वर अपने जीवों से भिन्न हो, और एक कौम को बहुत सुखी और दूसरी को बहुत दुःखी बनाता हो, और यदि एक मनुष्य को वह बहुत धनी और दूसरे को अति दीन बनाता हो, तो आप ऐसे प्रभु को क्या कहेंगे? निर्दयी, निर्दयी, अन्यायी, अन्यायी! अब यह प्रश्न है जिसका उत्तर उन लोगों को देना है जिनका विश्वास है कि परमेश्वर मानव जातिसे विभिन्न है। वेदान्त परमेश्वर को बहुत दूर नहीं मानता। जो चाहे केवल अपनी आँखे बन्द करके अपने अन्दर उसे देख सकता है।

कल्पना करो कि एक मालिक है जो एक समय पर बाग में जाता है, दूसरे समय पर महल में जाता है, एक समय पर अंधेरे कारागार में जाता है, और किसी दूसरे समय कपड़े पहनने के कमरे में जाता है, स्वयं पाकशाला में जाता है, और बोझे के नीचे भी खुद ही रहता है। उसे आप क्या कहेंगे? क्या वह अन्यायी है? नहीं, नहीं। जिन लोगों को उस ने जेल खाने में, बाग में, महल में, या वस्त्रागार में रक्खा, वे यदि उस से भिन्न होते, तो वह अन्यायी होता। किन्तु यदि वह खुद ही कपड़े पहनने वाले कमरे में जाता है, और वह स्वयं ही दूसरे स्थानों को जाता है, तो वह अन्यायी नहीं है। उस से सारा दोष हट जाता है।

इस भाँति वेदान्त कहता है कि यह प्रत्यक्ष अनेकता, यह वाह्य विरोध, परमेश्वर के मुख पर एक धब्बा होगा,

यदि परमेश्वर उन लोगों से विभिन्न होता जो कष्ट झेलते हैं और उन लोगों से (विभिन्न होता) जो धनी और गरीब हैं। पर परमेश्वर स्वयं वह ही है; स्वयं राम ही है; स्वयं मैं ही हूं। जो एक स्थान में धनी है, और जो कारागार में है, वह स्वयं मैं ही हूं, मैं ही रूपवान हूं और मैं ही कुरूप हूं, बाग में मैं हूं, और निर्जन स्थान में मैं हूं। किसे आप दोष देंगे? दोष लगाने वाला भी मैं हूं। एक बात इस संबंध में और कहना है।

इस देश में वेदान्त का प्रचार करना बड़ा ही कठिन है, जहां "मैं" शब्द का व्यवहार शरीर या मन के अर्थ में किया जाता है। इस देश में लोग कहा करते है "मेरे आत्मा है", और "मैं" से उन्हें शरीर, मन, बुद्धि, अन्तःकरण या जीव का बोध होता है। वेदान्त की उपलब्धि जिस मनुष्य को हो गई है, वह "मैं" शब्द से देह, मन अथवा पुनर्जन्म लेने वाली देह कदापि कदापि नहीं ग्रहण कर सकता। यह मैं नही हूँ। मैं यदि कोई वस्तु हूँ; तो मैं परमेश्वर हूँ।

यह एक वक्तव्य है। मैं एक बादशाह हूँ, मैं घोड़े का एक मालिक हूँ, मैं एक स्वामी हूँ, मैं एक अमेरिकावासी हूँ, मैं एक हिन्दू हूँ। "मैं परमेश्वर हूँ" इस बयान से ये सब बयान भिन्न प्रकार के हैं। आप इस विभिन्नता पर ध्यान दें। "मैं एक बादशाह हूँ" इस बयान में "बादशाह" शब्द एक उपाधि के तुल्य है। "मैं घोड़े का मालिक हूँ" में "घोड़े का मालिक" पदवी धारण की जाने वाली एक पोशाक के समान है। जब हम कहते हैं "मैं गरीब हूँ", तब गरीबी एक वस्तु है और मैं कोई दूसरी ही वस्तु हूँ। गरीबी मानों एक पोशाक है जो धारण कर ली गई है। अच्छा,हिन्दू कहता है, "मैं परमेश्वर

हूँ; किन्तु खबरदार, परमेश्वर शब्द कोई उपाधि नहीं है, यह एक गुण नहीं है, यह कोई पोशाक नहीं है जो तुम अपने को वही तुच्छ मिथ्या अहं (अहंकार) बनाये रखते हुए अपने ऊपर धारण करते हो, और एक वस्त्र की भाँति अपने ऊपर परमेश्वरता धारण करते हो। भारतवासी जब कहता है "मैं परमेश्वर हूँ" तब उसका यह प्रयोजन नहीं है। उसका वक्तव्य इसके तुल्य है:-यह साँप एक रस्सी है। यह एक मनुष्य है जिसने अन्धकार में इस रस्सी को साँप समझने की गलती की थी। यहां ज़मीन पर एक लिपटी हुई रस्सी पड़ी थी और उसने उसे साँप समझा, डर गया और गिर पड़ा। कोई व्यक्ति आता और कहता है, "भाई ! भाई !! तुम्हारा सर्प तो रस्सी है"। इस का क्या अर्थ है ? अर्थ है कि जिसको तुम ने भ्रान्ति से साँप समझा था वह साँप नहीं है, वह रस्सी है। यह बयान उसी तरह का नहीं है जैसा कि मैं सम्राट हूँ। यहां पर "सर्प" शब्द एक गुण नहीं है। यदि तुमने कहा होता कि "यह साँप काला है" तो "काला" शब्द 'सर्प' शब्द का गुण होता। किन्तु जब तुम कहते हो कि साँप रस्सी है, तब रस्सी गुण नहीं है। कृपया इस पर ध्यान दीजिये। इसे हृदयगम करना तनिक कठिन जान पड़ता है, किन्तु एक बार इसे समझ लेने पर तुम्हें शंकाएे उठाने का कोई अधिकार न रह जायगा। इसे ठीक समझो। "साँप काला है" यह एक प्रकार का बयान है और "साँप रस्सी है" बिलकुल दूसरी तरह का बयान है।

इसी तरह "मैं परमेश्वर-भक्त हूँ", "मैं देवदूत हूँ" एक प्रकार का बयान है, और जब हिन्दू कहता है "मैं परमेश्वर हूँ", तो दूसरी तरह का बयान है। जब

वह कहता है "मैं" परमेश्वर हूँ, तो अभिप्राय यह है कि मैं देह नहीं हूँ, जो तुम मुझे समझते हो वह मैं नहीं हूँ। तुम मुझे भ्रम से मांस और रक्त, हड्डियां और नसें समझते हो, किन्तु ऐसी वात नहीं है। मैं हड्डियां नहीं हूं न नसें हूं, न यह साढ़े तीन हाथ का टापू (पिंजड़ा) हूं, मैं न मन हूं, और न बुद्धि। मैं तो मुख्य निर्झर वा उत्स हूं, मैं असली शक्ति हूँ, स्वयं वास्तविक वस्तु हूं, सच्चा परमेश्वर हूं, सच्ची शक्ति हूं। केवल वही मैं हूं, और कुछ मैं नहीं हूं।

फिर लोग परमेश्वर को अपने न्यायालय के सामने यह कहने को लाना चाहते हैं, 'हे परमेश्वर! तू अमुक कार्य कर,' वह मानो उन की तरह साधारण पुरुष है और उन के सामने पेश किया जा सकता है और साधारण मनुष्य की तरह डाटा जा सकता है।

इन सब सन्देहों और शंकाओं का कारण एक कहानी के दृष्टान्त से व्यक्त किया जा सकता है।

भारत वर्ष में एक तेली था। उस के घर में एक अति सुन्दर तोता था। एक दिन यह तेली अपनी दुकान छोड़कर किसी जगह को गया। उस का नौकर भी किसी दूसरे काम पर चला गया। तोता दुकान पर था। तेली की गैर हाजिरी में वहां एक बड़ी बिल्ली आई। बिल्ली को देख कर तोता डर गया। वह पिंजड़े में था, परन्तु वह डर गया और उछला। तोते ने अपने पँख फड़फड़ाये, और इधर तथा उधर उछलता रहा, नतीजा यह हुआ कि पिंजड़ा, जो दिवाल में टंगा हुआ था, बड़े कीमती तेल के एक मटके पर गिर पड़ा। तेल का मटका टूट गया और तेल वह गया। कुछ देर के बाद तेली आया। अपने मूल्यवान तेल को बहा देख,

सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता) कितनी नसें हैं ? तुम ने आज सबेरे क्या भोजन नहीं किया था ? तो हमको बताओ कि सवेरे तुम ने जो भोजन किया था वह कहां है । क्या वह आंतों में है ? अथवा वह गुर्दे, पेट, या फेफड़ों में है ? कहां है वह भोजन ? वह कोई उत्तर नहीं दे सका । तब राम कहता है, तुम अपने सिर के बालों की संख्या नहीं बता सकते, और तथापि बाल तुम्हारे हैं । तुम अपनी हड्डियों और नसोंकी गिनती चाहे बता सको या नहीं, किन्तु हड्डियां और नसें हैं तुम्हारी । आज सवेरे तुमने जो भोजन किया था वह कहां है, यह चाहे तुम बता सको या नहीं, किन्तु शरीर है तुम्हारा । तुमने वह भोजन ग्रहण किया है, किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं ग्रहण किया है । इसी तरह तुम्हारी बुद्धि आकाश के तारों की संख्या बता सके या नहीं, सब तारे तुम्हारे हैं । इस समय इंग्लैंड में क्या होरहा है, तुम्हारी बुद्धि चाहे बता सके या नहीं, तथापि इंग्लैंड तुम्हारा है । बुध ग्रह (mercury) में क्या हो रहा है चाहे तुम बता सको या नहीं, बुध ग्रह है तुम्हारा । यदि तुम ये बातें नहीं बता सकते तो यह नतीजा नहीं निकलता कि वे तुम्हारी नहीं हैं । ये बातें कौन बतावेगा ? ये बातें बताना उसका काम है जो सान्त है । तुम बता सकते हो कि वह तसबीर किसकी है (दिवालपर की एक तसबीर दिखा कर), क्योंकि तुम जानते हो कि तसबीर यहां है । तुम तसबीर नहीं हो; अधिष्ठान और वस्तु विभिन्न हैं । वह तसबीर किस की है, यह तुम इस लिये बताते हो कि वह तुम से भिन्न है । 'तुम' शब्द यहां मिथ्या अर्थ में ग्रहण किया जाता है । किन्तु यदि तुम वह हो, यदि तुम हरेक वस्तु हो, यदि तुम्हारे सिवाय और कुछ नहीं है,

यदि तुम अनन्त हो, यदि अन्य कोई वस्तु नहीं है जो तुम्हें परिमित कर सकती हो, तो तुम्हारे विषय में कौन बतावे गा? इस तरह कहना और देखना वहां रुक जाता है। उसकी वहां तक पहुँच नहीं है। कोई भी शब्द वहां नहीं पहुँच सकते।

अन्य मनुष्य ने यह प्रश्न किया, "तुम फिर किस सम्प्रदाय के हो? तुम हिन्दू हो, ब्राह्मण हो ?" राम ने कहा. "नहीं"। "तुम ईसाई हो, यहूदी हो, तुम क्या हो? किस संज्ञा, किस धर्म, किस सम्प्रदाय के तुम हो?" यदि एक वस्तु किसी एक के अधिकार में है, तो वह उसकी सम्पत्ति है। एक बेजान चीज़ या एक पशु किसी के अधिकार में होता है, और ये चीज़े किसी व्यक्ति की मिलकियत होती हैं, या किसी के अधिकार में होता हैं। अरे, राम कोई बेजान वस्तु नहीं है। राम सम्पत्ति की तरह नहीं है, कि किसी न किसी का वह होना ही चाहिये। वह कोई पशु नहीं है। क्यों वह किसी एक का होना ही चाहिये? दुनिया उसकी है। अमेरिका राम की है। राम तुम्हारा निज आत्मा है। तुम सब मेरे हो. और भारत भी मेरा है। ईसाइयत, मुसलमानी, यहूदीधर्म, हिन्दुत्व, वेदान्त, सब मेरे हैं।

तुच्छ आत्माएँ (लघु आत्मायें) अपनी स्वाधीनता चाहे बेच दें, परन्तु तुम ऐसा कदापि न करना।

लोग कहते हैं कि इस देश में लोग स्वाधीन हैं। राजनैतिक स्वाधीनता भले ही उन्हें प्राप्त हो, किन्तु ओह! धार्मिक गुलामी, अमेरिका की सामाजिक गुलामी!! राम तुम्हें स्वाधीनता देना है, स्वतंत्रता देना है—स्वतंत्रता विचार

की, स्वतंत्रता कार्य की। राम जो धर्म सिखलाता है कुछ लोग उसे उपाधिमय वा आधे नाम वेदान्त से पुकारते हैं। किन्तु उसे कोई उपाधि (आधा नाम) नहीं मिलना चाहिये। सच्चा वेदान्त केवल वेदों तक परिमित नहीं है। वह तुम्हारे हृदयों में है। इस लिये राम तुम्हें सदा के लिये एक बार बता देना चाहता है कि राम केवल भारत-वासी नहीं है। राम अमेरिकन भी है। राम को केवल हिन्दू न मानो, राम ईसाई भी है। राम को इस मत या उस सम्प्रदाय का गुलाम न समझो। राम आप का अपना आप है, स्वयं स्वाधीनता है।

दूसरे मनुष्य ने कहा, "अच्छा, यदि तुम परमेश्वर हो, यदि तुम ईसा के समान हो, तो ईसा ने अमुक अद्भुत कार्य किया था, तुम भी अमुक अलौकिक कार्य करो, तब हम तुम पर विश्वास करेंगे।" राम कहता है, "भाई, ईसा ने अलौकिक कार्य किये और उसपर विश्वास नहीं किया गया। उसे उत्पीड़ित किया गया, उसे सूली दे दी गई। अलौकिक कार्यों से क्या तुम्हें विश्वास हो जायगा? कदापि नहीं"।

फिर, अलौकिक कार्य करना क्या है? वह सब क्या है? यदि संसार के सब चमत्कार यह शरीर कर दिखावे, तो उससे मेरी परमेश्वरता में तनिक भी अधिकता न होगी। मैं यह देह नहीं हूँ। मैं तुम्हारा अपना आत्मा हूँ। यदि यह देह अद्भुत कार्य करती है, तो भी क्या? वह देह जादू के से काम नहीं करती, किन्तु मैं वह भी हूँ। यदि यह देह अद्भुत कृत्य करेगी, तो तुम इस शरीर को परमेश्वर बना दोगे, जो कि इस [मामले] का अत्यन्त निकृष्ट भाग होगा। ऐसा तुम्हें नहीं करना चाहिये। राम चाहता है, कि तुम अपने

निजात्मा को ही परमेश्वर बनाओ। इस देह को परमेश्वर न समझो। अद्भुत काम करके और इस विशेष व्यक्तित्व का रंग तुम पर जमा कर राम तुम्हारी स्वाधीनता नहीं हरना चाहता। तुम्हें गुलाम बना कर तुम्हारी स्वतंत्रता राम को न ले लेना चाहिये, जैसा कि पूर्वगामी सिद्धों वा महात्माओं ने किया था।

तुम चाहते हो कि यह देह अलौकिक कार्य करे, किन्तु यह देह मैं नहीं हूँ। मैं तो वही ईश्वर हूँ, जिसने इस संसार का सम्पूर्ण अलौकिक कार्य पहले ही से कर रक्खा है। वही हूँ मैं। यह विस्तृत विश्व मेरा अलौकिक कृत्य है। वही मैं हूँ, जिसकी कारीगरी यह सम्पूर्ण विश्व है।

भारतवर्ष में यह शरीर जिस घर में रहता था, उस में एक लड़का चाकरी करता था। हर घड़ी राम से संसर्ग रहने के कारण, एक दिन वह लड़का ऊंचे भवन की सब से ऊंची छत (अटारी) पर चढ़ कर उच्च स्वर से पुकारने लगा, "मैं परमेश्वर हूं, मैं परमेश्वर हूं, मैं परमेश्वर हूं।" जिस मकान की चोटी परसे वह चीख रहा था उस के अगल बग़ल के मकानों में कुछ लोग थे। उन्हों ने उस से कहा, "क्या बक रहे हो, क्या कह रहे हो? क्या तुम कहते हो कि तुम परमेश्वर हो? यदि तुम परमेश्वर हो, तो छत से फांद पड़ो, और हम देखें कि तुम्हारे चोट लगती है या नहीं। यदि तुम्हारे चोट न लगी तो हम तुम्हें ईश्वर मान लेंगे। यदि तुम्हारे चोट लगी तो हम तुम्हें मार डालेंगे, तुम्हें पीड़ा देंगे। ऐसा तुम क्यों कह रहे हो? ऐसी अधार्मिक बात कहने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है"।

दैवी उन्माद से परिपूर्ण लड़का बोला, "ऐ मेरे निजात्मा!

में फांद पड़ने को तैयार हूं, जिस किसी अगाध गढ़े में तुम बताओ उसमें फांद पड़ने को मैं तैयार हूं। जिस समुद्र में तुम बताओ उसमें मैं फांद पड़ूं, किन्तु कृपा करके मुझे वह स्थान बताओ, जहां मैं पहले ही से नहीं उपस्थित हूं, क्यों कि फांद पड़ने के लिये ऐसा कोई स्थल होना चाहिये, जहां हम फांद सकें और जहां हम पहले ही से मौजूद न हों, मुझे वह स्थान बताइये जो मुझ से खाली है, जहां मैं अभी भी वर्तमान नहीं हूं। मैं देवताओं का महादेवता हूं। जहां मैं पहले ही से वर्तमान नहीं हूं, वह स्थान मुझे बताओ और मैं फांद पड़ूंगा। वह कैसे फांद सकता है जो पहले ही से सब में व्याप्त है? केवल वही फांद सकता है,जो परिमित है, जो यहाँ मौजूद है और वहां नहीं।"

तब उस सज्जन ने, जिसने उससे फांद पड़ने को कहा था, कहा, "अरे, क्या तुम वह परमेश्वर हो? तुम तो देह हो।" लड़के ने कहा, "यह शरीर तुम्हारी निजी कल्पना से बना है। मैं यह शरीर नहीं हूं। तुम्हारे प्रश्न और आपत्तियाँ मुझ तक नहीं पहुँच सकतीं। उनकी पहुँच केवल तुम्हारी कल्पना तक है। इसी तरह, वह कैसे फांद सकता है अथवा वह कैसे ऐसे काम कर सकता है, जो पहले ही से सर्वव्यापक है? एक भी ऐसा स्थल नहीं है जहां वह पहले ही से उपस्थित नहीं है। वही मैं हूं। यदि मैं केवल इस शरीर में मौजूद होऊँ और उस शरीर में नहीं, तो अवश्य मुझे इस देह द्वारा सांसारिक अद्भुत कृत्य करने चाहिये ताकि अपनी परमेश्वरता को सिद्ध करूं। सब शरीर मेरे हैं। पहले से तैयार वे मेरे हैं। मुझे केवल अधिकार जमाना है। मुझे कुछ भी नहीं बनाना है; हरेक वस्तु मैं बनाता हूं।"

दूसरा मनुष्य यह प्रश्न लेकर आया। "वेदों के प्रति तुम्हारा भाव क्या है ? तुम्हारा उनके संबंध में क्या विचार है ?" राम कहता है, "हम वेदों को उसी दृष्टि से देखते हैं जिससे रसायन विद्या को।" "तुम्हारा वेदों में विश्वास है ?" राम कहता है, "मैं वेदों को जानता हूं। मैं तुमसे उनकी सिफारिश करता हूं।" "क्या हमें वेदों को वैसा ही मानना चाहिये जैसा हम इंजील को मानते हैं ?" राम कहता है, "तुम इंजील को तबाह कर रहे हो। वेदों को भी उसी ढंग से न पहुँचो। जिस प्रकार से तुम रसायन विद्या या ज्योतिष की किसी पुस्तक को पढ़ोगे उसी तरह से वेदों को भी पढ़ो। बिना शंका के हरेक बात में न विश्वास करो, अर्थात् अन्धे विश्वास के साथ, जैसा कि कुछ हिन्दू करते हैं।" राम कहता है, "जब तुम रसायन विद्या की कोई पुस्तक उठाते हो, तब तुम उसके सिद्धान्तों में नहीं विश्वास कर लेते क्योंकि लेवोइसर (Lavoiser, या लाईबिग (Liebig) ने उन्हें निर्धारित किया है। इन बातों को दूसरों के कहने पर न ग्रहण करो। जिस मत (विश्वास) का आधार प्रमाण (दूसरों का वाक्य है), वह कोई मत ही नहीं है। उसका प्रयोग करो। स्वयं उनकी परीक्षा करो और ठीक वैज्ञानिक ढंग से उन्हें अपनाओ। अपनी स्वाधीनता न बेचो, अपनी स्वाधीनता क़ायम रक्खो। उन्हें इस प्रकार से पढ़ो और केवल तभी तुम वेदों का भाव ग्रहण कर सकोगे, अन्यथा तुम सदा तत्व से वंचित रहोगे। वेदों की शिक्षा किसी आलोचना, या प्रश्नों या संदेहों से सहमती (डरती) नहीं है। तुम्हारा सम्पूर्ण पाश्चात्य विज्ञान उनकी जाँच कर ले, तुम्हारा पाश्चात्य प्रकाश (तुम्हें याद है कि प्रकाश सदा पूर्व से आता है, किन्तु मान लो कि यह पाश्चात्य

प्रकाश है) अपनी चकित करने वाली किरणें लेकर आवे, और इस प्रकाश की बढ़िया श्रुति के सुंदर मुखमंडल को प्लावित कर दे। एक भी काला स्थल, एक भी काला तिल श्रुति के सुन्दर चेहरे पर नहीं है। वेदों का विज्ञान से विरोध नहीं है। तुम्हारे आज कल के आविष्कार और उपलब्धियां श्रुतियों की महारानी के केवल चरण धोते हैं। वे वेदान्त के पक्ष की पुष्टि अधिकाधिक कर रहे हैं।

जिन सब लोगों ने शुद्ध चित्त से वेदों का अध्ययन किया है, उन्हों ने उन की प्रशंसा की है। शोपेनहार (Schopenhauer), वह दार्शनिक जो कभी किसी दूसरे तत्वज्ञान की तारीफ़ नहीं करता था, जो अपने तत्वज्ञान को छोड़कर और सब तत्वज्ञानों की खूब निन्दा करता था, वेदों के सम्बन्ध में यह कहता है, "In the whole world there is no study so beneficial and so elevating as that of the Upanishads (Vedas). It has been the solace of my life, it will be the solace of my death." "सम्पूर्ण संसार में उपनिषदों (वेदों) के अध्ययन से अधिक हितकर तथा उन्नायक और कोई अध्ययन नहीं है। मेरे जीवन में उस से मुझे प्रबोध मिला है, और मृत्यु में भी मुझे उस से प्रबोध मिलेगा"।

शोपेनहार की इस उक्ति पर टीका करता हुआ मैक्स मूलर (Maxmuller) लिखता है।

"If the words of such an independent philosopher require any endorsement, with my life-long study of all the religions in this world, and all the systems of philosophy of Europe,

I am ready to humbly endorse this experience of Schopenhauer's."

"If Philosophy is meant to be preparation for a happy death, I know of no better preparation for it than the Vedanta Philosophy. (*viz.* the Philosophy of the Vedas.) "

"यदि ऐसे स्वाधीन दार्शनिक के शब्दों को भी किसी प्रकार के समर्थन की आवश्यकता है, तो इस दुनिया के सब धर्मों और यूरोप के सब तत्वज्ञानों के अपने आजविन अध्ययन के सहित मैं नम्रतापूर्वक शोपेनहार के अनुभव की पुष्टि करने को प्रस्तुत हूं"।

"यदि तत्वज्ञान का अभिप्राय सुख पूर्वक मरने की तैयारी करना है तो उसके लिये वेदान्त दर्शन (अर्थात् वेदों का तत्वज्ञान) से बढ़कर मैं किसी और तैयारी को नहीं जानता"।

दूसरा मनुष्य यह प्रश्न लेकर आया। "इधर देखो! तुम्हारा वेदान्त भारतवर्ष की ही संकीर्ण हदों के अन्दर बन्द है"। ये प्रश्न जिन पर अब विचार किया जायगा बहुत ही महत्त्वपूर्ण और बहुत ही रोचक हैं। वह कहता है कि ईसाई धर्म सम्पूर्ण संसार में फैल गया है और वेदान्त भारतवर्ष की संकीर्ण सीमाओं में ही निबद्ध वा संकुचित है,और केवल शिक्षित वर्गों का धर्म है, जन साधारण का नहीं। राम कहता है, यदि ईसाइयत का वास्तव में क़ौमों पर शासन होता तो कहीं अधिक अच्छा होता, यदि ईसाइयत वास्तव में यूरोप में प्रचलित होती तो राम के लिये बड़े हर्ष की बात होती! किन्तु यूरोप या अमेरिका में जो प्रचलित है

वह ईसाइयत नहीं है, वह चर्चियेनिटी (Churchianity) अर्थात् गिर्जाघरपन है।

और फिर, यदि तुम समझते हो कि असली ईसाइयत जन साधारण में फैल गयी है, और यह (बात) ईसाइयत के पक्ष में बहुत बड़ी दलील है, तो भाई, भ्रम में न पड़ो। शैतान के धर्म के मानने वाले ईसाई धर्म के अनुयायियों से अधिक हैं। आप जानते हैं कि असदाचार, बुरी वासनाएँ, शत्रुता, विद्वेष, मनोविकार, कामुकता, यह शैतान का धर्म है, और शैतान का धर्म ईसाइयत से अधिक प्रचलित है।

लंदन के पार्लियामेंट भवन में एक मनुष्य, जो बड़ा वाग्मी (orator) था, धिक्कारा दुतकारा गया था। आप जानते हैं कि बाद को उस ने क्या कहा? उस ने कहा, "क्या हुआ, यदि बहुमत तुम्हारे पक्ष में है"। दूसरे पक्ष से उस ने कहा, "Opinions ought to be weighed, they ought not to be counted" "मतों की तौल (परख) होनी चाहिये, उन की गिनती नहीं होनी चाहिये"। बहुमत सत्यता का कोई प्रमाण नहीं है।

एक समय था जब गैलीलियो (Galileo) कोपरनिकस (Copernicus) के मत का था। उस ने कहा कि पृथिवी घूमती है न कि सूर्य। वह पूर्ण अल्पमत (minority) में था, वास्तव में वह अकेला था। सम्पूर्ण विशाल विश्व उसके विपरीत था, सम्पूर्ण बहुमत (majority) उसके विरुद्ध था। किन्तु अब सत्य क्या है? अल्पमत की बात सच्ची है या बहुमत की? बहुमत और अल्पमत कोई चीज़ नहीं हैं। एक समय (ज़माना) था जब सम्पूर्ण बहुमत रोमन कैथोलिक

(Roman catholic) सम्प्रदायके पक्ष में था। एक ऐसा समय आया जब बहुमत दूसरे पक्ष की ओर था। एक समय वह था, जब ईसाइयत ग्यारह शिष्यों के ही अल्पमत तक परिमित थी। एक समय आया है जब कि यह ईसाइयत या गिर्जाघरपन देखने में बहुमत अपनी ओर रखता है। बहुमत और अल्पमत कुछ भी नहीं हैं। हम शिला पर खड़े हैं, हम सत्य पर स्थित हैं, और सत्य अवश्य प्रकट होगा।

दूसरे मनुष्य ने कहा, "देखो, ईसाई क़ौमें दुनिया में सारी तरक्की क्यों कर रही हैं? केवल ईसाई राष्ट्रों में ही उन्नति और सभ्यता है"। राम कहता है, "भाई, यदि यूरोप और अमेरिका भारतवर्ष और चीन तथा जापान से राजनैतिक और सामाजिक मामलों में आगे बढ़े हुए हैं तो ईसाइयत उस का कारण नहीं है। झूठे तर्क का उपयोग न करो। यदि सम्पूर्ण सभ्यता और सम्पूर्ण वैज्ञानिक उन्नति का सेहरा ईसाइयत के सिर बांधा जाना है, तो कृपा करके हमें बतलाओ कि जब गैलीलियो (Galileo) ने वह छोटा सा आविष्कार किया था तब इसाइयों ने उस के साथ कैसा (बुरा) वर्ताव किया था? ब्रूनो (Bruno) जला दिया गया था। किसने उसे जलाया था? ईसाइयत, ईसाइयत ने। हक्सले (Huxley), स्पेंसर (Spencer) और डारविन (Darwin) का ईसाइयत ने विरोध किया। उन के आविष्कारों और उन्नति तथा भाव-स्वाधीनता (independence of spirit) का उत्पादन और प्रोत्साहन ईसाइयत ने नहीं किया था। ईसाइयत के चूर कर देनेवाले सब प्रभावों के होते हुए भी वे जी रहे हैं। शोपेनहार (Schopenhauer) की क्या गति हुई थी? आप जानते हैं कि उस

को कैसे निर्वाह करना पड़ता था ? शोपेनहार को उतनाही महान बलिदान करना पड़ा था जितना कि ईसा को-ईसा अपने विश्वासों (Convictions), निश्चयों के लिये मर गया और शोपेनहार अपने विश्वासों के ही लिये जीता रहा, और आप जानते हैं कि अपने विश्वासों के लिये मर जाना, उनके लिये जीते रहने से सहज है। क्या आप जानते हैं कि शोपेनहार की स्वाधीन भावना को रोकने वाला कौन था ? अपनी पीछे की पुस्तकों में उसने वह तेज और शक्ति खो दी जो उसके पहले के लेखों में विशेष रूप से थी (वा जिस से वह अपने पहिले के लेखों में प्रसिद्ध वा विशिष्ट था)। हेगल (Hegel) और कैन्ट (Kant) के तत्त्वज्ञानों की दुर्बलता और हीनता का कारण ईसाइयत का प्रभाव है। क्या आप जानते हैं कि फिचेट (Fichte) को अपना अध्यापकी का पद कैसे छोड़ना पड़ा और वह अपने देश से निकाला गया ? इसका क्या कारण था ? ईसाइयत थी। प्रारम्भ से ही ईसाइयत के विरुद्ध होते हुए भी सम्पूर्ण उन्नति हुई है,न कि उस की कृपा से। ग़लत निर्णय या अविचार न करो।

एक भारतप्रवासी अंग्रेज़ जो कुछ दिनों भारतवर्ष में रहा था, इंग्लैंड लौटने पर अपनी स्त्री से अपनी शक्ति और बल का दर्प करने लगा। वे अपने दीहाती घर में रहते थे, और मौक़े पर एक भालू (रीछ) आ प्रकटा। यह भारत-प्रवासी अंग्रेज़ पास के पेड़ की चोटी पर चढ़ गया। उसकी स्त्री ने एक हथियार उठा लिया और भालू को मार डाला। तब वह पेड़ से उतरा। जहां ये लोग थे वहां कुछ दूसरे लोग आये और पूछा,"भालू किसने मारा?" उसने कहा "मैंने

और मेरी स्त्री ने भालू का वध किया है।" किन्तु बात ऐसी नहीं थी। इसी तरह, जब बात पूर्ण हो गई, तब यह कहना कि 'मैंने की है, ईसाइयत के द्वारा वह हुई है, सत्य नहीं है।

विज्ञान की सब उन्नति, यूरोप और अमेरिका में सम्पूर्ण दार्शनिक उन्नति, ये सब आविष्कार (inventions) और उपलब्धियां (discoveries) वेदान्त की वृत्ति के अमल में लाये जाने का फल हैं। वेदान्त का अर्थ है स्वाधीनता, स्वतंत्रता। उन (वैज्ञानिक उन्नति आदि) का कारण है स्वाधीनता की भावना, स्वतंत्रता की वृत्ति, स्ववशता की वृत्ति, शारीरिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से ऊपर उठने की वृत्ति। इस सारी उन्नति का कारण यही है, और यही है वेदान्त का बेजाने अमल में लाना। तुम इसे सच्ची ईसाइयत भी कह सकते हो। सच्ची ईसाइयत वेदान्त से भिन्न नहीं है, यदि तुम उसे ठीक ठीक समझो। वे कहते हैं कि हमने पृथ्वीतल से गुलामी उठा दी है, और हमने बहुत से सुधार किये हैं। राम कहता है, "भाइयो! गुलामी हटाई गई थी? अरे, राम बहुत चाहता है कि गुलामी हट गई होती! यदि हम यह बयान मान लें कि गुलामी का अन्त हो चुका है, तो उसके दूर होने का कारण ईसाइयत नहीं है। ईसाइयत में गुलामी को हटा सकने वाली कोई चीज़ होती तो गत पूर्ववर्ती सत्रह सौ साल में ईसाइयत ने गुलामी क्यों नहीं दूर करदी? कोई और ही बात थी। लोग अमेरिका को आये थे। यूरोपीय राष्ट्र इधर उधर जा रहे थे, दूसरी क़ौमों से उनका संसर्ग हो रहा था, और उनको शिक्षा दी जा रही थी, उनके मन विशाल बनाये जा रहे थे। यह अमली वेदान्त है। गुलामी दूर होने का यह

कारण था; न कि ईसाइयत। राजनैतिक और सामाजिक अवस्थायें लोगों के हृदयों और आत्माओं को आन्दोलित कर रही थीं। यदि अच्छी बातें तुम ईसाइयत के मत्थे मढ़ते हो तो नास्तिकों को दण्ड देना, डोनहिनियों (जादूगरनियों) का जलाना,सिर काटने का चक्र-और आप जानते हैं कि नास्तिकों निमित्त विचार (Inquisition, इनक्वीज़ीशन) क्या वस्तु है, एक समय सैन फ्रांसिस्कों में उसका वे राक टाक राज्य था, अरे दारुण! दारुण!! छाती से खून निकालना, इन सब के ज़िक्र की ज़रूरत राम को नहीं है—ये किस के सिर थोपोगे?

बहुतेरे प्रश्नों और अनेकों उत्तरों को राम छोड़ देने लगा है। उन पर हम फिर कभी विचार करेंगे।

एक प्रश्न और, "भारत वर्ष राजनैतिक हिसाब से इतना नीच क्यों है?" वे कहते हैं कि भारत के पतन का कारण वेदान्त है। यह बिलकुल गलत है। भारत की दुर्दशा का कारण वेदान्त का अभाव है। तुम जानते हो राम ने तुम से कहा है कि वह हरेक देश का है। राम भारतवासी की, हिन्दू की, वेदान्ती की हैसियत से नहीं आता है। राम राम होकर आता है, जिसका अर्थ है सर्वव्यापक। राम न तुम्हारी चुपड़ करना चाहता है और न भारत वासियों की-राम भारत या अमेरिका या किसी-वस्तु का पक्षपाती नहीं है। राम "सत्य, पूर्ण सत्य, और शुद्ध सत्य" का हामी है और उस हेतु से, उस स्थिति बिन्दु से, राम कहता है। जो कुछ वह कहता है—राम न भारत की चापलूसी करना चाहता है और न अमेरिका की। सत्य यह है कि जब तक वेदान्त भारत जनता में प्रचलित था तब तक वह अपनी महिमा के उच्चतम

शिखर पर था, तब उस का सर्व श्रेष्ठ राज्य था, और वह सम्पूशाली था। वहां एक ऐसा समय आया कि यह वेदान्त एक विशेष श्रेणी के लोगों के हाथों मे पड़ गया। और तब वह भारत की जनता में नहीं पहुंचने पाया, और तब भारत का पतन शुरू हुआ। वेदान्त जनता में नहीं पहुंचने पाया। भारतीय जनता एक ऐसे धर्ममें विश्वास करने लगी—मैं गुलाम हूं, मैं गुलाम हूं, ए परमेश्वर! मैं तेरा गुलाम हूं। यह धर्म यूरोप से भारत में आया था। यह एक ऐसा कथन है जिस से ऐतिहासिक और दार्शनिक कहे जाने वाले लोग चकित हो जांयगे, जो यूरोपियनों को चकित कर देगा, किन्तु राम ने विना समझे बूझे यह बात नहीं कही है। यह एक ऐसा बयान है जो गणित की सी निश्चयात्मकता के साथ सिद्ध वा प्रमाणित किया जासकता है। जो धर्म यह चाहता है कि हम अपने आप को व आत्मा को तुच्छ दृष्टि से देखें और आत्मा की निन्दा करें, और अपने को कीड़े, नीच अभागे, गुलाम, पापी कहें, वह भारत वर्ष में बाहर से आया था, और जब वह जनता का धर्म बन गया तब भारत का अधःपात शुरू हुआ। और यूरोपियनों तथा अमेरिकनों का क्या हाल है? यूरोपियन भी अपनी गुलामी में विश्वास करते हैं—"ए परमेश्वर! हम तेरे गुलाम हैं" राजनैतिक और सामाजिक दृष्टियों से उन का भी भारत वासियों का सा पतन क्यों नहीं हुआ? इस के दृष्टान्त स्वरूप एक कहानी कही जायगी, जिस का ज़िक्र प्रकृतिवादी और विकाशवादी लेखक प्रायः करते हैं। उन का कहना है कि कभी कभी कमज़ोरी बचाव का कारण हो जाती है। हमेशा योग्यतम ही नहीं बचते। ॐ।

टिड्डियों की बहुत बड़ी संख्या एक ओर को उड़ी जारही थी। कुछ टिड्डियों के पंख जाते रहे और वे गिर पड़ीं। बाकी टीड़ियां जो भली-चंगी थीं उड़ती गईं। किन्तु जब वे एक पहाड़ी पर पहुचीं तब पहाड़ी जल रही थी, और सब टीड़ियां नष्ट हो गईं। इस में दुर्बल बच गया और योग्यतम नष्ट होगया।

भारतवासी कोई बात कहते हैं तो मन से कहते हैं। वे सच्चे हैं और धर्म को सर्वस्व मानते हैं। वे भीतर और बाहर एकसां थे-जब उन्हों ने प्रार्थना की, "ऐ परमेश्वर! मैं तेरा गुलाम हूं; ऐ परमेश्वर! मैं तेरा अधम गुलाम हूं; ऐ परमेश्वर! मैं पापी हूं।" भारत वर्ष की जनता जब इस तरह प्रार्थना करने लगी, वह सच्ची थी, और कर्म की— अटल, निष्ठुर कर्म की-व्यवस्था के अनुसार उन्हें अपनी आकांक्षाओं और अभिलाषाओं को पूर्ण होते देखना पड़ा, और उनकी कामनाएँ और इच्छाएँ सफल हुईं। वे गुलाम बना दिये गये। किस के द्वारा? उन्हें परमेश्वर ने गुलाम बना दिया था, तुम कहते हो। क्या परमेश्वर के कोई शक्ल है, क्या परमेश्वर की कोई आकृति है? यह परमेश्वर अपने निराकार रूप में आकर उन पर शासन नहीं कर सकता था। परमेश्वर आया। कौन परमेश्वर? प्रकाशों का प्रकाश, श्वेत स्वरूप। श्वेत रूप अंग्रेज़ों के स्वच्छ चमड़े में आया और उन्हें गुलाम बना दिया। ग़लत समझी हुई ईसाइयत, या गलत समझे गये गिर्जाघरपन ने भारत वर्ष का पतन सम्पादित किया।

जाओ और भारत वर्ष का हाल देखो, और जो कुछ राम

कहता है उस का तुम्हें विश्वास हो जायगा। भारत के दूसरे स्वामी या दूसरे साधू जो कुछ कहते हैं केवल उस पर यदि आप विश्वास करेंगे तो आप धोखा खायेंगे। भारत के पतन का कारण केवल वेदान्त का अभाव है। और गुलामी की उसी भावना के कारण यूरोपियन क्यों नहीं गुलाम हुए? यूरोपीय लोग धर्म की अपेक्षा धन की अधिक परवाह करते हैं। उन की प्रार्थनाओं में, उन के धार्मिक मामलों में, जैसा कि पहले आप को बताया जा चुका है, ईश्वर केवल एक फ़ालतू चीज़ है, उस को उन के कमरे बहारने और साफ करने पड़ते हैं। धर्म केवल तसवीरों या चित्रों की तरह बैठक खाने सजाने के लिये है। जो प्रार्थनाएँ हृदय और सच्ची अन्तरात्मा से निकलती थीं, वे प्रार्थनाएँ गुलामी के लिये नहीं थीं; बल्कि दौलत, सम्पत्ति और सांसारिक लाभ के लिये थीं। इस लिये उन का उत्थान हुआ। यह कर्म के नियम के अनुसार है। इतिहास हमें बताता है कि जब तक भारत के जन साधारण में वेदान्त प्रचलित था, तब तक भारत समृद्धिशाली था।

एक समय में फिनीशिया के रहनेवाले (Phœnicians) बड़े शक्तिशाली थे किन्तु उन्हों ने भारत पर चढ़ाई करके कभी विजय नहीं प्राप्त की। मिस्री बड़ी उच्च अवस्था में थे, किन्तु वे भारत पर अपनी हुकूमत नहीं जमा सके। ईरान का सितारा एक दिन बलन्दी पर था, परन्तु भारत पर दुश्मनी की नजर डालने की कभी उस की हिम्मत न हुई। रोमन सम्राट्, जिनका गिद्ध प्रायः सारे संसार पर उड़ता था, सम्पूर्ण ज्ञात पृथ्वी पर जिनका शासनाधिकार था, भारत को अपने शासन में लाने का साहस न कर सके-

यूनानी जब शक्तिशाली हुए तब सदियों तक एक बुरी दृष्टि भारत पर नहीं डाल सके। सिकन्दर नाम का एक सम्राट् वहां आया, गलती से उसे महान् सिकन्दर कहते हैं। उन दिनों में वेदान्त की वृत्ति तब तक जनता में प्रचलित थी, वह उन से चली नहीं गई थी। भारतवर्ष जाने से पहले उसने अपना जाना हुआ सारा संसार जीत लिया था। महा शक्तिशाली सिकन्दर, जिसका बल बढ़ाने को विपुल ईरानी सेना थी, सम्पूर्ण मिस्री सेना का जो अध्यक्ष था, भारतवर्ष जाता है, और एक छोटा भारतीय राजा पुरुस उस का सामना करता है, और डरा देता है। इस भारतीय राजा ने इस महान् सिकन्दर को नीचा कर दिया, और उस की सब सेनाओं को चलता कर दिया। सब सेना पस्त कर दी गई और महान् सिकन्दर लौटने को लाचार हुआ। यह कैसे हुआ था? उन दिनों में भारत की जनता में वेदान्त प्रचलित था। तुम इस का प्रमाण चाहते हो? प्रमाणस्वरूप भारत का वृत्तान्त पढ़ो, जो उन दिनों के यूनानी छोड़ गये हैं, इतिहास में उस समय के यूनानियों, सिकन्दर के साथियों, का लिखा हुआ भारत का हाल पढ़ो। तुम देखोगे कि जन साधारण में अमली वेदान्त का प्रचार था और लोग बलिष्ठ थे।। महान् सिकन्दर को लौटना पड़ा था।

एक ऐसा समय आया जब एक साधारण आक्रमणकारी ने जो महमूद गजनवी कहलाता था, सत्रह बार भारत वर्ष को लूटा। सत्रह बार भारत से वह सारी दौलत ले गया जो उस के हाथ में आई। उन दिनों का जनता का वृत्तान्त पढ़िये, और आप देखेंगे कि जन साधारण का धर्म वेदान्त के ठीक विरुद्ध ध्रुव पर (अर्थात् नितान्त विरुद्ध) था।

वेदान्त प्रचलित था, किन्तु केवल कुछ चुने हुए लोगों में। जनता उसे त्याग चुकी थी। और इस तरह भारत नीचा हुआ।

लोग कहते हैं कि तुम त्याग का प्रचार करते हो, और त्याग हमें गरीब बना देगा। अरे, यह बिलकुल गलत है। यह ठीक है कि वेदान्त सीखने के लिये तुम्हें वनों की शरण लेना पड़ती है, हिमालय के जंगलों के अगम एकान्त स्थानों में तुम्हें जाना पड़ता है। किन्तु वेदान्त यह कदापि नहीं सिखाता, कि तुम्हें फकीरी की जिन्दगी बसर करना चाहिये। कभी नहीं, कभी नहीं। वनों में जा कर रहना तो ठीक उसी तरह है जिस तरह विद्यार्थियों का महाविद्यालय जाना। क्या यह सत्य नहीं है कि कोई विज्ञान या तत्वज्ञान सीखने के लिये तुम्हें एकान्त में रहना चाहिये, ऐसे स्थान में तुम्हें रहना चाहिये जहां परेशान करने वाली कोई बातें न हों? तुम्हें ऐसे स्थान में रहना चाहिये जहां शान्तिपूर्वक बिना गुल गपाड़े के अपना अध्ययन जारी रख सको। इस प्रकार यदि भारतवासी जंगल में जाकर रहता है, और यदि वह वन को जाता है, तो वह केवल ऐसे स्थानों में अपने को रखने के लिये जाता है, कि जहां वह विज्ञानों के विज्ञान का पूर्ण ज्ञाता बन सके, जहां वह वेदान्त के सच्चे भाव की पूर्ण उपलब्धि कर सके। आप जानते हैं कि वेदान्त रसायन विद्या की तरह प्रयोग पर अवलम्बित विज्ञान है। रसायन विद्यामें तब तक आप कोई उन्नति नहीं कर सकते जब तक आप उस के अनुरूप प्रयोग न करें। इसी भांति वह मनुष्य वेदान्त के बारे में क्या जान सकता है जो मिलने वाली बौद्धिक शिक्षा के साथ साथ आध्यात्मिक (अभ्यास या)

प्रयोग नहीं करता। इस प्रकार ये आध्यात्मिक प्रयोग करने के लिये और बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये लोगों को वनों में जाकर रहना पड़ता है। वन तो विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के तुल्य हैं। यह ज्ञान प्राप्त कर वे संसार में आते और उस का प्रचार करते हैं, और नित्य के जीवन में उसे घटाते हैं, तथा लोगों को जानने देते हैं कि वे तत्व-ज्ञान की पद्धति को अमल में कैसे ला सकते हैं। आप जानते हैं कि प्रत्येक ब्राह्मण या हिन्दू को जो पांच साल वन में बिताने पड़ते थे उन में वह इस ज्ञान को प्राप्त करता था, और इसे प्राप्त कर उसे दुनिया में आना पड़ता था और वहां काम करना पड़ता था, और कुछ को तो साधारण गृहस्थी के कर्त्तव्यों का भी पालन करना पड़ता था। वेदान्त का पूर्ण ज्ञान होने के बाद हरेक को साधू नहीं होना पड़ता। यह ठीक वैसी ही बात है जैसे कि बहुत से विद्यार्थी साहित्य शास्त्री या विज्ञान शास्त्री की उपाधि पाते हैं परन्तु उन सब से अध्यापक या आचार्य बनने की आज्ञा नहीं की जाती। कुछ मेजिस्ट्रेट, कुछ बड़े रोजगारी होते हैं, और उन में से कुछ अध्यापक भी होते हैं।

इसी तरह वेदान्त की उपलब्धि, पूरी तरह से वेदान्त की प्राप्ति और अनुभव से आप उस अवस्था को प्राप्त होते हैं;जिस में सारा संसार तुम्हारे लिये स्वर्ग, बाग बन सकता है, जिस में सम्पूर्ण विश्व आप के लिये वैकुण्ठ बन सकता है, ताकि जीवन आप के जीवने के योग्य हो जाय– वे लोग वेदान्त का अस्तव्यस्त वर्णन करते हैं जो कहते हैं कि वेदान्त चाहता है कि हरेक मनुष्य फकीर बन जाय। नहीं, नहीं। साधुओं का बाहरी क्रम ग्रहण करना विज्ञानशास्त्री

की परीक्षा पास करने के बाद अध्यापकी का व्यवसाय करने के समान है।

पुनः हम देखते हैं कि इस वेदान्त का प्रचार वे लोग करते थे जो दुनियवी ज़िन्दगी में सरगर्मी से लगे हुए थे। वेदान्त निराशावादी नहीं है। जो इस धर्म को निराशावाद बताते हैं उन का कहना अयथार्थ है, आकाश-पाताल की दूरी है। वेदान्त तो बल्कि आशावाद का सर्वोच्च शिखर है।

वेदान्त कहता है कि यदि तुम अपने शरीर को भव-सागर में बिना पतवार, बिना पथप्रदर्शक, बिना डांड़ या बिना पाल (बादबान) बिना भाप या बिजली के डाल दोगे तो अवश्य ही तुम्हारा जीवन जहाज तबाह हो जायगा। आप अपने को सब तरह की पवनों और तूफ़ानों की दया पर छोड़ देते हैं। वेदान्त कहता है कि अज्ञान के कारण संसार क्लेश और दीनता (दौर्भाग्य) से परिपूर्ण है। केवल अज्ञान पाप है। अज्ञान ही तुम्हारी सारी दीनता वा बद-नसीबी का कारण है। जब तक तुम अनजान (अज्ञानी) हो तभी तक तुम पीड़ित हो। और वेदान्त कहता है कि यदि तुम इस अज्ञान को हटा दो, यदि तुम पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर लो, यदि तुम सच्ची आत्मा को जान लो, तो सारे कारागार तुम्हारे लिये स्वर्ग बन जायंगे। जीवन जीने के लायक बन जाता है, कभी परेशानी नहीं होती; कभी किसी बात से हैरानी नहीं होती, कभी स्थिरता डांवा डोल नहीं होती, कभी मन की उपस्थिति नहीं जाती, कभी मन मलीन या उदास या चेहरा रोना नहीं होता। क्या यह वाँछनीय नहीं है? क्या यही यथार्थ सत्य नहीं है? वेदान्त निराशा-

वाद नहीं है। वह कहता है, "ऐ दुनिया के लोगो! तुम इस दुनिया को पूरा पूरा नरक-बना देते हो। ज्ञान प्राप्त करो, ज्ञान प्राप्त करो यह है वेदान्त की स्थिति। निराशावाद बिलकुल नहीं।

और आप देखते हैं कि इस वेदान्त का प्रचार संसारी लोगों ने किया है, जो लोग फकीर होने से बहुत दूर थे, किन्तु जो तथापि त्यागी पुरुष थे।

एकदा एक महान् भारतीय राजा अपने सांसारिक कर्त्तव्यों को छोड़कर वन गमन करनेवाला था। उसके गुरूने, (इस शरीर के एक पूर्व पुरुष ने), उसे इस वेदान्त की शिक्षा दी। और वेदान्त के रहस्य को पाकर, सच्चा त्यागी पुरुष बनने के बाद, वह शक्तिशाली सम्राट भांति की रहा।

एक बड़ा योद्धा, अर्जुन जो, कुरुक्षेत्र के समर का नायक था, अपने सांसारिक कर्म को छोड़ देने वाला था। उसका कर्तव्य चाहता था कि वह युद्ध करे, और वह उसे त्याग देना चाहता था,वह विमुख होने वाला था, वह साधू बन जाने वाला था, वह ऐसा करने ही पर था कि कृष्ण उसके सामने उपस्थित हुए। उन्हों ने अर्जुन को वेदान्त की शिक्षा दी, और ठीक तरह से समझे हुए इसी वेदान्त ने अर्जुन की हिम्मत बंधाई, अर्जुन में तेज और बल का संचार किया, उसमें कर्मण्यता और जीवन की भावना फूँकी, और शक्ति शाली सिंह की तरह वह उठ खड़ा हुआ, और वहीं वह अति पराक्रमी नायक बन गया।

वेदान्त तुम में शक्ति और तेज भर देता है, और दुर्बलता नहीं। वेदों में एक वाक्य है जो कहता है कि इस आत्मा, इस सत्य की उपलब्धि उस मनुष्य को कदापि, कदापि नहीं

हो सकती है जो बल हीन है। यह दुर्बल के लिये नहीं है। दुर्बल चित्त, दुर्बल शरीर, दुर्बल वृत्ति इसे कदापि नहीं प्राप्त कर सकते।

. एक बड़े राजा ने अपना राज्य त्याग दिया और बन को चला गया, जहां उसने सच्चा ज्ञान प्राप्त किया। और सच्चा ज्ञान लाभ करने के बाद वह लौट गया और राज-सिंहासन का अधिकार किया। सिंहासन की शोभा उसकी मौजूदगी से उसके पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद ही हुई थी, और पहले नहीं हुई।

यदि त्याग से अभिप्राय फकीरी नहीं है, तो फिर त्याग क्या है ? यह एक उत्कृष्ट विषय है। इसे किसी दूसरे समय उठाया जायगा।

यहां एक वाक्य हिन्दू धर्म ग्रन्थों का है। कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दू मांस नहीं खाते क्योंकि वे समझते हैं कि ईश्वर सब कहीं है। हिन्दू मांस नहीं खाते, वेदान्ती मांस नहीं खाते, यह सत्य है, किन्तु कारण यह नहीं है। कारण कुछ और ही है। उसकी चर्चा करने का अब समय नहीं है।

उपनिषद् (कठ*) में एक वाक्य है। अंग्रेजी में उसका उल्था इस प्रकार हुआ है:—

"If he that slayeth thinks 'I slay'; if he
Whom he doth slay, thinks 'I am slain,'
then both

* हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥
कठ अध्याय पहिला वल्ली दूसरी)

Know not a right ! That which was life in each
Cannot be slain, nor slay !"

"यदि वह जो वध करता है समझता है 'मैं वध करता हूं';, यदि वह,
जिसे वह वध करता है, समझता है 'मेरा वध होता है, तो दोनों,
ठीक नहीं जानते ! वह जो दोनों में जीवन था,
मारा नहीं जासकता, और न मार सकता है ।"

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

माया ।

अथवा

दुनिया का कब और क्यों ।

जनवरी १९०३, में गोल्डेन गेट हाल, सैन फ्रांसिस्को में दिया हुआ एक व्याख्यान ।

* ॐ *

महिलाओं और सज्जनों के रूप में ऐ माया के शासक, हाकिम और नियामक स्वरूप !

आज के व्याख्यान का विषय माया है । यह वह विषय है जिसे ऊपरी या मोटी दृष्टि वाले समालोचक वेदान्त दर्शन का अत्यन्त निर्बल स्थल समझते हैं । आज हम अत्यन्त दुर्बल अंश को उठावेंगे । जिन विचार वानों और दार्शनिकों ने वेदान्त दर्शन का अध्ययन किया है, वे सब एकमत से कहते हैं कि यदि इस माया का स्पष्टीकरण हो सके तो वेदान्त की और सब बातें मान्य होंगी । वेदान्त की अन्य हरेक बात अत्यन्त स्वाभाविक, स्पष्ट, स्वच्छ, हितकर और उपयोगी है । वेदान्त के विद्यार्थियों के रास्ते में यह एक अटक, एक गिरानेवाली रोक है । यह एक बहुत बड़ा विषय है । इस की पूर्ण विवेचना के लिये केवल इसी विषय पर दस व्याख्यान होने चाहिये और तब कहीं विषय इतने स्पष्ट और सरल रूप में उपस्थित किया जा सकता है कि सूर्य तले वा पृथ्वी पर का और किसी तरह का भी सन्देह,या प्रश्न बे उत्तर न रह जाय । हरेक बात साफ़ की जा सकती है,

परन्तु उस के लिये समय चाहिये। जल्दबाज पाठकों और जल्दबाज श्रोता गणों द्वारा उस के पूरी तरह समझे जाने की आशा नहीं की जा सकती।

प्रश्न है, 'यह दुनिया क्यों हुई, यह दुनिया कहां से हुई ?' अथवा वेदान्त की भाषा में यों कह सकते हैं, 'विश्व में यह अविद्या क्यों ?' आप जानते हैं कि वेदान्त कहता है कि यह विश्व असत्य है। केवल देखने मात्र वा व्यापार मात्र है। अविद्या नित्य नहीं है। ये सब दृश्य (व्यापार) सत्य या नित्य नहीं हैं। प्रश्न उठता है, "यह अविद्या ही क्यों है?" यह अविद्या जो इस दृश्य (व्यापार) का कारण है, अथवा यह माया जो इस सम्पूर्ण मैं और तुम रूपी भेद और भेद करण के मूल में है, यह अविद्या शुद्ध स्वरूप या आत्मा पर क्यों काबू जमा ले ? यह माया या अविद्या परमेश्वर से अधिक शक्तिशालिनी क्यों हो ?.

साधारण भाषा में, अन्य दार्शनिकों और ब्रह्म विद्या के जानने वालों की भाषा में प्रश्न है, "इस संसार का अस्तित्व ही क्यों है ?" "परमेश्वर ने इस संसार को क्यों रचा ?" वेदान्त कहता है, "नहीं, भाई ! तुम्हें यह प्रश्न करने का कोई अधिकार नहीं है। इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है।" वेदान्त साफ़ साफ़ कहता है कि इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। वह कहता है कि निज अनुभव से (वा परीक्षणार्थ) और प्रत्यक्ष रीति से सिद्ध करके हम तुम्हें दिखा सकते हैं कि यह संसार जो तुम देखते हो वास्तव में परमेश्वर के सिवाय और कुछ नहीं है, और अनुभव द्वारा निर्विवाद रूप से हम तुम्हें दिखा सकते हैं कि सत्य की उपलब्धि में जब तुम यथेष्ट ऊंचे चढ़ते हो तब यह दुनिया तुम्हारे लिये

गायब होजाती है। किन्तु इस दुनिया का अस्तित्व ही क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर देने से हम विरत रहते हैं। यह प्रश्न करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर देने में वेदान्त अपनी असमर्थता स्पष्टतया स्वीकार करता है, और यहीं पर अन्य सब ब्रह्मवादी, अन्य मतावलम्बी और सब मोटी दृष्टि वाले दार्शनिक आगे आते और कहते हैं, "अरे, अरे, वेदान्त—दर्शन अपूर्ण है, वह संसार का क्यों और कहां से, नहीं बतला सकता। वेदान्त कहता है, "भाई, इस प्रश्न (संसार का क्यों और कहां से) जो उत्तर तुम स्वयं देते हो उन की जाँच करो,सावधानी से उनकी जाँच करो और तुम देखोगे कि तुम्हारे जवाब कोई जवाब ही नहीं हैं। इस प्रश्न पर विचार करना बिलकुल समय नष्ट करना है,निरानिर समय और श्रम का अपव्यय है। यह काम झाड़ी की दो चिड़ियों की खोज में अपने हाथ की चिड़िया को छोड़ देने के समान है। उन चिड़ियों तक पहुँचने के पहले वे उड़ जांयगी और तुम अपने हाथ की चिड़िया खो दोगे। वह भी उड़ जायगी। वेदान्त कहता है कि सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान और सम्पूर्ण विज्ञान की गति ज्ञात से अज्ञात को होनी चाहिये। घोड़े के आगे गाड़ी को न रक्खो। अज्ञात से आरम्भ करके ज्ञात पर न आओ।

एक नदी बह रही थी, जिस के तट पर कुछ लोग खड़े हुए थे और उसके उद्भव के सम्बन्ध में युक्ति पूर्वक विचार कर रहे थे। इन में से एक ने कहा, "यह नदी शिलाओं, चट्टानों, पहाड़ियों से आती है। पहाड़ियों से जल उमड़ कर सोता बनता है, और वह नदी का कारण है।" दूसरे मनुष्य ने कहा, "अरे, नहीं, यह असम्भव है। पत्थर इतने

कठोर, इतने कठिन और इतने दृढ़ हैं और जल इतना सरल तथा कोमल है। कड़े पत्थरों से मुलायम जल कैसे निकल सकता है ? असंभव। असंभव। बुद्धि नहीं मान सकती कि कड़े पत्थर मुलायम पानी को बाहर निकाल रहे हैं। यदि पत्थर पानी देसकें तो मैं पत्थर का यह टुकड़ा उठाता हूं और इसे निचोड़ता हूं। इस से तो बिलकुल पानी नहीं बहता। इस प्रकार यह कथन निराधार है कि नदी इन पहाड़ों से निकली है। मैं एक अच्छी युक्ति (theory) बताता हूं। कहीं कोई दीर्घकाय पहलवान है. उसी के पसीने से यह नदी बहती है। हम नित्य देखते हैं कि जब कोई मनुष्य पसीजता है, तब उस के शरीर से पानी बहता है। यहां पानी बह रहा है। अवश्य ही यह किसी व्यक्ति के शरीर से निकला है जो पसीज रहा है। यह युक्तिसंगत है। हमारी बुद्धियां इसे स्वीकार कर सकती हैं। यह बात यथार्थ सी जान पड़ती है, यह बिलकुल ठीक है।" दूसरे मनुष्य ने कहा, "नहीं, नहीं, कोई व्यक्ति कहीं खड़ा हुआ थूक रहा है और यह थूक है।" दूसरे मनुष्य ने कहा, "नहीं, नहीं।"

अब इन लोगों ने कहा, "इधर देखो, इधर देखो, हम लोगों की ये सब कल्पनाएँ साध्य (feasible) हैं, पानी के मूल की ये सब युक्तियां असली हैं। प्रत्येक दिन हम ऐसी बातें देखते हैं। नदी के मूल के सम्बन्ध में ये सब कल्पनाएँ बहुत ही यथार्थ सी हैं, उत्तम और महान् जान पड़ती हैं, क़िन्तु पत्थरों से जल बहने की युक्ति को, उस मनुष्य की साधारण बुद्धि कभी न मानेगी कि जिस ने पत्थरों से जल उमड़ते कभी नहीं देखा है, जो पहाड़ों पर कभी नहीं गया

है, यद्यपि है यह सत्य।" और इस युक्ति की सत्यता का आधार क्या है? अनुभव, निज परीक्षा, प्रत्यक्ष अवलोकन।

इसी प्रकार, दुनिया के मूल, इस संसार के 'क्यों और कहां से को' इस संसार की धारा के सोते, जीवन की नदी को विभिन्न लोग भिन्न प्रकार से वर्णन करते हैं। उस प्रकार की बुद्धि के लोगों के अनुसार, कि जिन्हों ने नदी का मूल-स्रोत थूक और पसीना बताया था, दुनिया के मूल की भी व्याख्या बहुत कुछ वैसी ही होती है। वे कहते हैं "यह एक मनुष्य है जो जूते बनाता है, जूते बिना किसी मनुष्य के बनाने के इरादे या नकशे के नहीं बन सकते थे। यह एक मनुष्य घड़ी बनाता है। यदि कोई मनुष्य घड़ी बनाने का इरादा और तरकीब न करता घड़ी नहीं बन सकती थी। यह एक मकान है। बिना किसी मनुष्य के नकशा और ढांचा तैयार किये मकान नहीं बन सकता था। प्रति दिन वे यह देखते हैं और तब वे कहते हैं, 'यह संसार है। चमार, घड़ीसाज़, मेहमार सरीखा कोई मनुष्य हुए बिना दुनिया नहीं बन सकती थी, और इस लिये दुनिया का बनाने वाला एक कोई होना ज़रूरी है, जो इस संसार को बनाता है, और इस प्रकार वे कहते हैं कि एक साकार (व्यक्तिगत) परमेश्वर है, जो मेघों पर खड़ा है। विचारे पर रहम भी नहीं खाते कि कहीं उसे सर्दी न हो जाय। उन का कहना है कि किसी साकार परमेश्वर ने अवश्य दुनिया की रचना की होगी।"

उन का तर्क बहुत यथार्थ सा, युक्तिसंगत और उसी प्रकार का जान पड़ता है, जिस प्रकार की उन लोगों की दलीलें कि जिन्हों ने कहा था कि नदी किसी के पसीने से

बढ़ती है। दुनिया भी किसी मनुष्य द्वारा ज़रूर ही बनाई गई होगी।'

वेदान्त इस तरह की कोई युक्ति नहीं पेश करता। वेदान्त कहता है, देखो, इसे अनुभव करो, इसे विचार से देखो, प्रत्यक्ष अनुभव से तुम देखोगे कि दुनिया जो कुछ दिखाई देती है वह नहीं है। यह कैसे? वेदान्त कहता है, यहां तक तो मैं तुम्हें समझा सकता हूं कि पानी उन पत्थरों से बाहर निकल रहा है। पत्थरों से पानी कैसे निकलता है, यह चाहे मैं तुम्हें न बता सकूं, परन्तु मैं जानता हूं कि पानी पत्थरों से आता है। मेरे साथ उस स्थान तक चलो और तुम पत्थरों से पानी उमड़ते देखोगे। यदि मैं यह नहीं बता सकता कि पानी पत्थरों से क्यों निकलता है तो मुझे दोष न दो, दोष लगाओ पानी को, वह पत्थरों से निकल रहा है।

इसी भाँति वेदान्त कहता है, मैं चाहे तुम्हें बता सकूं या नहीं कि यह माया या अविद्या क्यों है, किन्तु माया का होना है एक तथ्य। वह क्यों आई, मैं तुम्हें शायद न बता सकूं। यह एक तथ्य है, अनुभव सिद्ध तथ्य है। वेदान्तिक ढंग निरानिर वैज्ञानिक और अनुभव सिद्ध (अनुभवलब्ध) है। वह कोई असिद्ध अनुमान (hypothesis) नहीं स्थापित करता, कोई कल्पना (theory) नहीं पेश करता है। संसार के भूल को समझाने की योग्यता का वह दावा नहीं करता। धारणा या बुद्धि के प्रदेश से परे की यह बात है। यह है वेदान्त का पक्ष। यह मायां कहलाती है। दुनिया क्यों प्रकट होती है? वेदान्त कहता है, क्योंकि तुम उसे देखते हो। संसार (वहां) क्यों है? वेदान्त केवल कहता है,

चूंकि तुम उसे देखते हो । तुम नहीं देखते हो, (वहां) तो दुनिया नहीं है । कैसे तुम जानते हो कि दुनिया (यहां) है ? क्यों कि तुम उसे देखते हो । न देखो, तो दुनिया कहां है ? अपनी आंखें बन्द कर लो, दुनिया का पांचवां हिस्सा चला गया, दुनिया का वह अंश जिसे तुम अपने नेत्रों के द्वारा बोध करते हो अब नहीं रह गया। अपने कान बन्द करो और पांचवां हिस्सा और चला गया। अपनी नाक बन्द करो और दूसरा पांचवां हिस्सा लुप्त। अपनी किसी इन्द्रिय से काम न लो तो कहीं कोई दुनिया नहीं। तुम दुनिया देखते हो, और तुम्हें समझाना चाहिये कि दुनिया (वहां) क्यों है। तुम उसे (वहां) बनाते हो। तुम्हें स्वयं उत्तर देना चाहिये। तुम मुझ से क्यों प्रश्न करते हो। तुम वहां दुनिया की रचना करते हो। (फिर मेरे से प्रश्न कैसा ?)।

एक बच्चा था। उसने दर्पण में एक छोटे लड़के की प्रतिमा, अर्थात् स्वयं अपनी प्रतिमा देखी। किसी ने बच्चे से कहा कि शीशे में एक बहुत ही सुन्दर, प्रिय छोटा बच्चा है, और उसने शीशे में देखा–तो उसे एक प्यारा नन्हा लड़का दिखाई दिया। किन्तु बच्चा यह नहीं जानता था कि यह स्वयं उसका प्रतिबिम्ब है। उसने प्रतितिबिम्ब को शीशे के अन्दर एक अद्भुत लड़का समझा। बाद को बच्चे की माँ ने उसे समझाना चाहा कि शीशे के अन्दर का लड़का उसी का प्रतिबिम्ब मात्र है, असली लड़का नहीं है, किन्तु बच्चे को विश्वास न हुआ। वह नहीं समझ सका कि दर्पण में वस्तुतः दूसरा बालक नहीं है। जब माता ने कहा, "इधर देखो, यह एक शीशा है, इसमें कोई लड़का नहीं है," तब

बच्चे ने वहाँ पहुँच कर कहा, "ओ मां, ओ मां, यह क्या लड़का है,"। जब लड़का कह रहा था, 'यह लड़का है' तब 'यह लड़का है' कहते ही समय उसने अपना प्रतिबिम्ब शीशेमें डाला। माता ने फिर उसे समझाना चाहा कि शीशे में सच्चा लड़का नहीं है। लड़के ने फिर प्रमाण या साधन मांगा। लड़का दर्पण के पास गया और बोला, "यह देखो, यह लड़का है।" शीशे में कोई वस्तु नहीं है, यह सिद्ध करने ही के कार्य में लड़के ने शीशे में वस्तु रखदी।

इसी तरह जब तुम आकर कहते हो, "दुनिया क्यों हुई, दुनिया कहाँ से हुई, दुनिया कैसे हुई," जिस क्षण तुम दुनिया के मूल और दुनिया की उत्पत्ति के कारण और स्थल का अनुसन्धान करने लगते हो, उसी क्षण तुम दुनिया की वहां सृष्टि कर देते हो। इस प्रकार कैसे तुम दुनिया का मूल और उत्पत्ति-स्थान जान सकते हो? हम कैसे उसका मूल जान सकते हैं? हमें उससे परे का ज्ञान कैसे हो सकता है? हम कैसे उसका अतिक्रमण कर सकते हैं? यह और भी स्पष्ट होजाना चाहिये, लौकिक और अध्यात्मिक दोनों पहलुओं से। कुछ कहते हैं कि जगदीश्वर ने जगत् को रचा है और वह स्रष्टा कहीं अलग खड़ा हुआ है। यदि वे एक घर देखते हैं तो उन्हें विदित होता है कि किसी ने उसे बनाया था। इस लिये वे कहते हैं कि यह दुनिया किसी व्यक्ति के द्वारा रची गई थी। अब प्रश्न यह है कि दुनिया की सृष्टि करने के लिये यह सृष्टि कर्त्ता कहीं खड़ा अवश्य हुआ होगा। वह कहां खड़ा हुआ था? यदि वह कहीं खड़ा हुआ था, यदि उसके ठहरने के लिये कोई जगह थी, तो दुनिया उसकी सृष्टि होने से पहले ही से मौजूद थी, क्योंकि

ठहरने की जगह कहीं दुनिया में अवश्य होगी। दुनिया अपनी रचना होने से पहले ही से मौजूद थी। जब तुम जाँच करने लगते हो कि दुनिया का प्रारम्भ कब हुआ, तब तुम दो कल्पनाओं को पृथक करना चाहते हो—कब, कैसे और कहां से की कल्पना को एक ओर, और दुनिया की कल्पना को दूसरी ओर। किन्तु "क्या, कब, और कहाँ से" ये शब्द, "काल, कारण (वस्तु) और देश" की कल्पनाएँ क्या दुनिया का एक हिस्सा नहीं हैं? अवश्य हैं। और अब आप ध्यान दीजिये, आप समग्र संसार का 'मूल', 'क्यों' और 'कहां-से' जानना चाहते हैं। काल, देश, और कारण भी दुनिया में हैं, दुनिया से परे नहीं हैं। ज्यों ही तुम कहना शुरू करते हो कि दुनिया कब शुरू हुई, उसी क्षण दुनिया एक ओर हो जाती है और 'कब' की कल्पना दूसरी ओर। तब तुम दुनिया को दुनिया ही से पहले रख देते हो। यह विषय बहुत ही सूक्ष्म और बहुत ही कठिन है, और आप कृपया बहुत ध्यान देकर, अत्यन्त सावधानी से सुनें।

दुनिया प्रारम्भ हुई, कब? इस कथन में तुम दुनिया को दुनिया ही से पृथक कर लेना चाहते हो, तुम 'कब' की कल्पना को दुनिया से अलग करना चाहते हो, तुम दुनिया को 'कब' और 'कैसे' से नापना चाहते हो। किन्तु तुम जानते हो कि 'कब' और 'क्यों' स्वयं दुनिया हैं। तुम दुनिया से ऊपर उठना, दुनिया से परे जाना चाहते हो, और वहां आगे दुनिया को ही रखते हो।

एक बार एक इंस्पेक्टर एक स्कूल में गया और लड़कों से यह सवाल पूछा, "यदि खरिया का एक टुकड़ा हवा में छोड़ दिया जाय तो वह कब पृथ्वी पर पहुँचेगा?" एक

लड़के ने उत्तर दिया, "इतने पलों में।" "यदि पत्थर का एक टुकड़ा इतनी वितनी ऊँचाई से फेंका जाय तो वह कितनी देर में गिरेगा?" लड़के ने जवाब दिया, "इतने समय में।" तब इंस्पेक्टर ने कहा, "यदि यह वस्तु गिरने दी जाय तो इसे कितनी देर लगेगी?" लड़के ने उत्तर दे दिया। तब परीक्षक ने फंदे में फंसाने वाला एक सवाल पूछा, "यदि पृथ्वी गिरे तो उसे गिरने में कितनी देर लगेगी?" लड़के हकबका रह गये। एक तेज़ लड़के ने जवाब दिया, "पहले मुझे यह बताइये कि पृथ्वी गिरेगी कहां?"

इसी तरह हम सवाल कर सकते हैं कि यह दिया कब जलाया गया था, यह घर कब बनाया गया था, और यह तल (फर्श) कब जमाया गया था, इत्यादि। किन्तु जब हम प्रश्न करते हैं, "भूमि की सृष्टि कब हुई थी, संसार की सृष्टि कब हुई थी, तब यह उलझाने वाला सवाल भी उसी तरह का है जिस तरह का "पृथिवी को गिरने में कितना समय लगेगा" सवाल था। पृथ्वी कहां गिरेगी? "क्यों, कब और कहां से," यह स्वयं दुनिया का एक अंश हैं,और जब सम्पूर्ण संसार के संबंध में हम इस क्यों, कब, और कहां से की चर्चा करते हैं तब हम मानों एक मंडल में दलील करते हैं। अर्थात् घूम फिर कर पुनः वहीं पहुँचते हैं। एक तार्किक भूल करते हैं। क्या तुम अपने आप से बाहर निकल कर कूद सकते हो? नहीं। इसी तरह क्यों कब और कहां से, यह स्वयं दुनिया होने के कारण, दुनिया का एक भाग हैं। वे दुनिया, सम्पूर्ण विश्व की व्याख्या नहीं कर सकते। वेदान्त जो कुछ कहता है वह यह है।

अब दूसरी तरह पर यह समझाया जायगा।

यहां एक मनुष्य सोया हुआ है। और अपनी निद्रा में वह सब प्रकार की वस्तुएँ देखता है। वह द्रष्टा और वस्तु (दृश्य) है; स्वप्न का द्रष्टा. मैं कहूंगा, स्वप्न, जंगलों, नदियों, पहाड़ों तथा अन्य वस्तुओं का विभ्रान्त द्रष्टा है। वहां स्वप्न की वस्तु और द्रष्टा का साथ ही साथ आविर्भाव होता है, जैसा कि उस दिन के व्याख्यान में बताया गया था। क्या स्वप्न का द्रष्टा, स्वप्न का मुसाफिर बतला सकता है कि ये नदियाँ, पहाड़, झीलें तथा अन्य भूभाग कब अस्तित्व में आये ? जब तक तुम स्वप्न देख रहे हो, क्या तुम कह सकते हो कि ये वस्तुएँ कब आकर मौजूद हो गई ? नहीं, कदापि नहीं। जब तुम स्वप्न देख रहे हो, नदियां, घाटियां, पहाड़ और भूप्रदेश (landscapes) तुम्हें नित्य जान पड़ेंगे, तुम्हें ये सब प्राकृतिक जान पड़ेंगे, मानों सदा से उनका अस्तित्व है। स्वप्नदर्शी द्रष्टा की हैसियत से तुम कभी कल्पना नहीं करोगे कि तुम ने कभी अपना स्वप्न शुरू किया था, तुम उसे सत्य समझोगे और वे सब घाटियां, नदियां, भूभाग नित्य प्रतीत होंगे। तुम कभी उनका मूल नहीं जान सकते। जब तक तुम स्वप्न देख रहे हो तब तक तुम स्वप्न का क्यों, कब और कहां से कदापि नहीं जान सकते। जागते ही सब कुछ चला जाता है, जागते ही सब चीज़ें गायब हो जाती हैं।

इसी तरह इस दुनिया में तुम सब प्रकार के पदार्थ देखते हो। वे असली जान पड़ते हैं और अनन्त प्रतीत होते हैं, जैसे कि स्वप्न में कोई हद नहीं होती। तुम नहीं जान सकते कि स्वप्न कब शुरू हुआ था। क्या आप कह सकते हैं कि काल चक्र कब आरम्भ हुआ था ? दो व्यवस्थाओं के इस परस्पर विरोधको कैन्ट (Kant) ने भी बताया है। काल (समय) कब शुरू हुआ था ? जब तुम

कहते हो कि काल अमुक समय शुरू हुआ था, तब तुम काल को स्थापित कर देते हो। यह प्रश्न ही असम्भव है। देश कहां से शुरू हुआ था? यह प्रश्न असम्भव है। उस ओर से जहां देश शुरू हुआ तुम वहां एक विन्दु रखते हो, जहां वह शुरू हुआ था। देश का प्रारम्भ 'कहां' की कल्पना से घिरा हुआ है, और 'कहां' की कल्पना में देश की कल्पना शामिल है। प्रश्न असम्भव है। कारण की लड़ी कहां से शुरू हुई? यह प्रश्न असम्भव है। कारण की लड़ी क्यों शुरू हुई? यह प्रश्न असम्भव है। अरे, यदि तुम कारण की लड़ी का कोई प्रारम्भ बताते हो, तो तुम यह भी तो देखते हो कि क्यों की कल्पना स्वयं ही कारण है। वह तुमसे परे है। यह ऐसा प्रश्न है जिसका कि कोई जवाब नहीं। इस पार या उस पार कहीं भी देश, काल, वस्तु या कारण का कोई अन्त नहीं है। शोपेनहार (Schopenhauer) उसे सिद्ध करता है। हर्बर्टस्पेंसर (Herbert Spencer) इसे सिद्ध करता है। प्रत्येक विचारवान् तुम्हें बतावेगा कि इनका कोई अन्त नहीं है। स्वप्नों में भी उस विशेष श्रेणी के समय का जिसे तुम स्वप्न में बोध करते हो कोई अन्त नहीं है, चाहे इस ओर हो या उस ओर। स्वप्नों में भी उस श्रेणी विशेष के देश की, जिसे तुम स्वप्न में बोध करते हो, कोई सीमा नहीं है। स्वप्नों में उस विशेष श्रेणी की कारण-परम्परा का कोई अन्त नहीं है जिसे तुम स्वप्नों में देखते हो।

इस प्रकार जागृत अवस्था में भी ऐसा ही है। वे सब लोग, जो इस प्रश्न का उत्तर प्रत्यक्ष प्रमाण से (या लौकिक दृष्टि से) देने का यत्न करते हैं, अपनी राह भूले रहे हैं और

तर्क के घेरे में चक्कर काट कर अपने को हैरान कर रहे हैं। इस प्रकार प्रश्न के सब प्रत्यक्ष वा प्रयोगसिद्ध (empirical) उत्तर असम्भव हैं। स्वप्नदर्शी द्रष्टा जब जागता है, तब सारी समस्या हल होजाती है। और जागता हुआ स्वप्नदर्शी द्रष्टा कहता है, 'अरे, कोई स्वप्न नहीं था, वह सब (उस रूप में भी) बिलकुल सत्य था।' इसी भांति सत्य की उपलब्धि रूपी जागृति पर, मुक्ति की वह पूर्ण अवस्था पाने पर जो वेदान्त सब के सामने रखता है, तुम देख सकते हो कि यह दुनिया निरानिर तमाशा थी, केवल क्रीड़ावस्तु, कोरा भ्रम थी, और कुछ नहीं।

माया का वही प्रश्न इस तरह भी किया जाता है:— "यदि मनुष्य परमेश्वर है, तो वह अपने असली स्वभाव को क्यों भूल जाता है?" वेदान्त का उत्तर है:—"तुम में जो असली परमेश्वर है, वह अपनी वास्तविक प्रकृति को कभी नहीं भूला। तुम में जो वास्तविक परमेश्वर है वह यदि अपने सच्चे स्वभाव को भूल गया होता, तो वह निरन्तर इस विश्व का शासन और नियंत्रण न करता रहा होता। सच्चा परमेश्वर बिलकुल नहीं भूला है। वह अब भी इस विश्व का शासन और नियंत्रण कर रहा है। कोई नहीं, कोई नहीं भूला है। ठीक स्वप्न की सी अवस्था है। स्वप्न में, जब तुम विभिन्न प्रकार के पदार्थ देखते हो, वास्तव में वह तुम नहीं होते हो जो उन पदार्थों को देखता होता है। वह स्वप्न का द्रष्टा है, जिसकी सृष्टि स्वप्न की अन्य वस्तुओं के साथ ही होती है, जो उन सब पदार्थों को पाता है, उन सब दृश्यों को देखता है, और उन कंदराओं, पहाड़ों, तथा नदियों में रहता है। असली स्वरूप, आत्मा, सच्चा

परमेश्वर कदापि कोई बात नहीं भूला है। यह मिथ्यात्मा (अहंकार) का ख्याल ही स्वयं माया की रचना है, या उसी प्रकार भ्रम है जैसे अन्य पदार्थ। शुद्ध स्वरूप कुछ भी नहीं भूला है। जब तुम कहते हो, "परमेश्वर आदमी (के जामे) में क्षुद्र अहंकारी आत्मा होकर, अपने को भूल क्यों गया," तब वेदान्त कहता है, तुम्हारे इस प्रश्न में वह बात है जिसे तर्कशास्त्री प्रमाण में घेरे या युक्ति के चक्र की भूल कहते हैं। यह सवाल तुम किससे कर रहे हो? यह प्रश्न तुम स्वप्नदर्शी द्रष्टा से कर रहे हो या जाग्रत के द्रष्टा से? स्वप्नदर्शी द्रष्टा से तुम्हें सवाल नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह कुछ नहीं भूला है। वह तो स्वयं भी वैसी ही रचना है जैसी कि दूसरे पदार्थ जिनको वह देखता हैं। और जाग्रत अवस्था के असली द्रष्टा से तुम सवाल कर नहीं सकते। सवाल कौन करेगा? तुम जानते हो कि स्वप्नों में प्रश्नकर्ता स्वयं स्वप्नमय अवश्य होता है, और जब स्वप्नदर्शी द्रष्टा ही दूर कर दिया, तब प्रश्न कौन करेगा? प्रश्न करने और उत्तर देने की सम्पूर्ण द्वैत केवल तभी तक सम्भव है जब तक माया का स्वप्न जारी है अथवा रहता है। केवल स्वप्नदर्शी द्रष्टा से तुम प्रश्न कर सकते हो और स्वप्नदर्शी द्रष्टा उसका उत्तर दायी नहीं है। स्वप्नदर्शी द्रष्टा को हट जाने दो, फिर तो सम्पूर्ण दृश्य-संसार, सम्पूर्ण स्वप्न ही अदृश्य हो जाता है। और प्रश्न करनेवाला कोई नहीं रह जाता। कौन किससे सवाल करेगा?

यह एक सुन्दर नौका है, और यह नाविक का एक चित्र है जो नौका को नदी के आर-पार ले जाता है। मल्लाह बड़ा अच्छा आदमी है और वह नाव का मालिक है, किन्तु केवल

तभी तक जब तक वह वास्तविक समझी जाती है। नौका का मालिक उसी अर्थ में नौका का स्वामी है जिस अर्थ में नौका एक नौका है। वास्तव में न कहीं नौका है, और न कहीं नौका का मालिक। दोनों ही मिथ्या हैं। किन्तु जब हम एक बच्चे से कहते हैं, "चले आओ, चले आओ, देखो, नौका का स्वामी कैसा सुन्दर है," तब नौका का स्वामी और नौका दोनों एक ही तरह के हैं। नौका के मालिक को स्वयं नाव से अधिक वास्तविक कहने का हमें कोई अधिकार नहीं है।

इसी तरह वेदान्त के अनुसार, संसार का नियामक, शासक, स्वामी, या परमेश्वर, परमेश्वर की कल्पना का सम्बन्ध इस संसार से वैसे है, जैसे कि उस चित्र में नाविक का सम्बन्ध नाव से है। जब तक नौका वहां है, तभी तक मल्लाह भी वहां है। जब उन्हें नौका की अयथार्थता का अनुभव हो जाता है, तब मल्लाह भी ग़ायब हो जाता है।

इसी प्रकार से नियामक, शासक, रचयिता, निर्माता तभी तक तुम्हारे लिये सच्चा है, जब तक दुनिया तुमको सच्ची जान पड़ती है। दुनिया को जाने दो, वह कल्पना भी चली जायगी। सृष्टिकर्त्ता की कल्पना में सृष्टि, "क्यों, कब, और कहां" से यह सब निहित है। दुनिया का "कब, क्यों, और कहां से," का प्रश्न इस दुनिया से उसी तरह सम्बन्ध रखता है जिस प्रकार मल्लाह नौका से। वे दोनों ही समग्र चित्र के भाग हैं। यदि वे दोनों एक ही भाव (दाम) के हैं, तो दोनों भ्रम हैं। 'क्यों, कब, और कहां-से' प्रश्न भी भ्रम है। कब, क्यों और कहां-से, यह प्रश्न इस दुनिया का सारथी, मल्लाह, या नेता है। जब तुम जागते हो और

सत्य का अनुभव करते हो, तब सम्पूर्ण संसार तुम्हारे लिये पट पर चित्रित नौका के समान हो जाता है, और क्यों, कब तथा कहां-से का प्रश्न, जो हांकने वाला या मल्लाह था, लुप्त हो जाता है। वास्तव में जो काल से परे है, देश से परे है, कारण (वस्तु) से परे है, वहां कोई क्यों, कब, और कहां-से नहीं है। लोग कहते हैं कि संसार का कारण एक सगुण वा साकार सृष्टिकर्त्ता हैं। वेदान्त कहता है, नहीं (नेति)। यह नेति शब्द संस्कृत में प्रायः आया है, और अमेरिकनों ने इसे विगाड़ कर 'निट', वह नहीं, बना लिया है। प्रश्न का उत्तर ही नहीं है, वा प्रश्न का उत्तर ही नहीं दिया जा सकता।

दूसरा मनुष्य आता और कहता है, "परमेश्वर को स्वयं अपने से प्रेम हो गया और उस ने यह संसार बनाया, उस ने शीशमहल की तरह यह संसार बनाया, और उसने अपने आप को इन सब रूपों में देखना चाहा, अतएव उस ने यह संसार बनाया।" वेदान्त कहता है, 'नेति' 'निट,' यह नहीं। तुम्हें यह अनुमान करने का कोई अधिकार नहीं है।

एक दूसरा मनुष्य आता और कहता है कि संसार की रचना हुए इतने साल बीते। वेदान्त कहता है, 'नेति,' 'निट,' यह नहीं। 'क्यों' का ठीक अर्थ माया है। मा का अर्थ है नहीं और या का अर्थ है यह, और माया का अर्थ है यह नहीं। प्रश्न ऐसा है जिस का तुम उत्तर नहीं दे सकते। यह नहीं। अब प्रश्न है, क्या संसार सत्य है ? वेदान्त कहता है 'नेति,' 'माया,' यह नहीं, 'निट' (nit)। तुम इसे सत्य नहीं कह सकते। क्यों नहीं ? क्योंकि सत्यता का अर्थ है

वह कोई वस्तु जो नित्य है, जो कल्ह, आज, और सदा एकसां रहती है। यह सत्यता है। क्या संसार सदा रहता है? वह सदा नहीं बना रहता। इस लिये सत्यता के वर्णन की पूर्ति वह नहीं करता। तुम्हारी गाढ़ निद्रा (सुषुप्ति) में वह गायब हो जाता है। अनुभव, पूर्णता या मुक्ति की तुम्हारी दशा में वह गायब हो जाता है। इस तरह वह सदा नहीं बना रहता। फलतः उसे सत्य कहने का तुम्हें कोई हक नहीं है। क्या संसार असत्य है? वेदान्त कहता है नेति, यह नहीं, माया, निट। यह अति विचित्र है। संसार असत्य नहीं है। वेदान्त कहता है, "नहीं, यह असत्य नहीं है, क्योंकि असत्य का अर्थ है वह कोई वस्तु जो वेदान्त के कथन के अनुसार कभी नहीं है, जैसे मनुष्य के सींग। क्या मनुष्य के कभी गौ के समान सींग थे? कभी नहीं। यह असत्य है, और संसार असत्य नहीं है क्योंकि इस समय वह तुम्हें वर्त्तमान प्रतीत होता है। वह तुम्हें उपस्थित जान पड़ता है, इस लिये तुम्हें उसे असत्य कहने का कोई अधिकार नहीं हैं। क्या संसार सत्य है? नेति, निट। क्या संसार असत्य है? नेति, निट। तो क्या संसार अंशतः सत्य और अंशतः असत्य है? वेदान्त कहता है माया, नेति, निट। यह भी नहीं। असत्य और सत्य साथ नहीं रह सकते। इन प्रश्नों के ये उत्तर वेदान्त का मायावाद कह लाते हैं। इन प्रश्नों के ऐसे उत्तरों का दूसरा नाम 'मिथ्या' है, यह शब्द तुम्हारे (अंग्रेज़ी के) 'माइथालोजी' शब्द का सगोत्री है। इस का अर्थ है वह कोई वस्तु जिसे हम न सत्य कह सकते हैं और न असत्य कह सकते हैं और न जिसे हम सत्य तथा असत्य दोनों कह सकते हैं। ऐसी तुम्हारी दुनिया है।

नास्तिक कहते हैं कि कहीं कोई परमेश्वर नहीं है। वेदान्त कहता है, नेति, निट, माया। वे गलती पर हैं क्योंकि उनके पास यह कहने की कोई दलील नहीं है कि परमेश्वर नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि एक साकार परमेश्वर है। वेदान्त कहता है नेति, निट, यह नहीं। इस तरह की बात कहने का तुम्हें कोई हक नहीं है। वेदान्त कहता है इस राज्य में तुमको पैर नहीं रखना चाहिये, इस राज्य में तुम्हारी बुद्धि काम नहीं दे सकती। इसी संसारमें तुम्हारी बुद्धिके लिये यथेष्ट (काफी) काम करने को है, उसे यहीं काम करने दो। "Render unto Caesar the things that are Caesar's and render unto God what is God's." सीज़र की जो चीज़ें हैं वह सीज़र को दो, और परमेश्वर का जो कुछ है वह परमेश्वर को दो।" तुम्हारी बुद्धि के लिये स्थूल लोक में ही, प्रत्यक्ष राज्य (ब्रह्माण्ड) में ही यथेष्ट काम है, किन्तु आध्यात्मिक जगत में तुम्हें केवल एक राह से आना है, केवल एक ही राह से, और वह मार्ग है <u>अनुभव का, वह मार्ग है, प्रेम का, भावना का, श्रद्धा का. वल्कि ज्ञान का।</u> अद्भुत प्रकार का ज्ञान, अद्भुत प्रकार का परमेश्वरीय ज्ञान। जब तुम इस प्रदेश में ठीक राह से आते हो, तब सब प्रश्नों का अन्त होता है, सब समस्याएँ हल हो जाती हैं। साम वेद के केन उपनिषद में एक वाक्य* है जिसका अंग्रेज़ी में कुछ कुछ यह उल्था होता है:—

"I cannot say I know it, nor can I say I do not know it;

---

*नाहं मन्ये सुवेदेति नो न.वेदेति वेद च। यो न स्तद वेद तद वेद नो न वेदेति वेद च ॥ २ ॥ (केन खण्ड २)

Beyond knowing and not knowing it is."

"मैं नहीं कह सकता कि मैं उसे जानता हूँ, न यही कह सकता हूँ कि मैं उसे नहीं जानता,

वह जानने और न जानने से परे है।"

ठीक यही बात आधुनिक तत्त्वचिन्तक (वा विचारवान लोग)कहते हैं। हर्बट स्पेंसर (Herbert Spencer) अपने फर्स्ट प्रिंसिपल्स (First Principles)के प्रथम भाग "दी अननोएबल" (The Unknowable) में उसी परिणाम पर पहुँचता है जिस पर वेदान्त पहुँचता है। वह जो कुछ कहता है उसे पढ़ कर तुम्हें सुनाने की ज़रूरत राम को नहीं है, किन्तु एक छोटा वाक्य पढ़ा जा सकता है।

"There must exist some principle which being the basis of Science cannot be established by Science. All reasoned out conclusions whatever must rest on some postulate. There must be a place where we meet the region of the Unknowable, where intellect ought not to venture, cannot venture to go."

अर्थः—ऐसा कोई वीज (principle-तत्व) होना ही चाहिये जो विज्ञान का आधार होते हुए भी विज्ञान के द्वारा स्थापित नहीं किया जा सकता। तर्कसिद्ध सभी परिणामों के आश्रय के लिये कोई स्वीकृतपक्ष (निर्विवाद आधार) होना आवाश्यक है। कहीं न कहीं पर हम उस प्रदेश में अवश्य पहुँच जाते हैं जो अज्ञेय (The unknowable) है,

जहां बुद्धि का प्रवेश नहीं, जहां जाने का साहस बुद्धि नहीं कर सकती।"

इस विषय में सब तत्वज्ञानियों के कथन का आशय ऐसा ही है। तनिक ध्यान दीजिये। लोग कितनी भूल करते हैं जब वे परमेश्वर को साभिप्राय बताते हैं, जब वे कहते हैं कि परमेश्वर ने यह अवश्व किया होगा। परमेश्वर में दया अवश्य होगी, परमेश्वर में प्रेम ज़रूर होना चाहिये, परमेश्वर में भलाई होना चाहिये, परमेश्वर में यह या वह गुण होना चाहिये। ऐसे लोग कितनी गलती करते हैं, क्योंकि सब प्रकार का श्रेणीविभाग परिमितता (परिच्छेद) है। एक ही सांस में तुम परमेश्वर को अनन्त और सान्त कहते हो। एक ओर तो तुम कहते हो कि वह अनन्त है और दूसरी ओर तुम कहते हो "अरे, उसमें यह गुण है और उसमें वह गुण है।" जब तुम कहते हो वह अच्छा है, वह बुरा नहीं है, तब वह परिमित हो जाता है। जहां कहीं अच्छा (भला) है, वहां बुरा नहीं है। जब तुम कहते हो कि वह सृष्टिकर्त्ता है, वह प्राणी (जीव) नहीं है, तब तुम उसे परिच्छिन्न कर देते हो; तब तुम एक ऐसे स्थान का निर्देश करते हो जहां वह नहीं है। वह सर्व है। और पुनः जब तुम कहते हो कि परमेश्वर ने इस या उस उद्देश्य से संसार की रचना की, तब तुम परमेश्वर को ऐसी कोई वस्तु बना देते हो जो आकर अपनी करतूतों का उसी तरह जवाब दे सकता है जिस तरह एक मनुष्य एक मेजिस्ट्रेट के सामने जाकर अपने कृत्यों का विवरण देता है। इसी तरह जब तुम परमेश्वर को किसी बात के लिये ज़िम्मेदार ठहराते हो अथवा किन्हीं अभिप्रायों, उद्देश्यों, या मनसूबों को उसके

मत्थे मढ़ते हो, तब अमली तौर पर तुम अपने को मेजिस्ट्रेट या न्यायाधीश बनाते हो और परमेश्वर को वह मनुष्य, जिसने कि कुछ काम किये हैं और जो तुम्हारे समक्ष अपने कार्यों का हिसाब देने के लिये हाज़िर हुआ है। यों तुम उसे परिमित कर देते हो। वेदान्त कहता है कि परमेश्वर को अपनी अदालत के सामने लाने का तुम्हें कोई हक नहीं है। यह प्रश्न त्याग दो; यह अन्याय्य (विधिविरुद्ध) है।

वेदान्त शब्द का अर्थ 'किसी भी व्यक्ति विशेष की गुलामी नहीं' है। मोहमडन (मुसलमान) शब्द मोहम्मद के नाम पर निर्भर करता है। जो कुछ मोहम्मद साहिब ने किया या कहा है, उस पर हमें विश्वास करना चाहिये। क्रिश्चियनिटी (ईसाइयत) शब्द क्राइस्ट (ईसा) के नाम की गुलामी है। बौद्धमत (बुद्ध धर्म) शब्द एक खास नाम बुद्ध भगवान् की गुलामी है। ज़ोरोआस्टर-धर्म (पारसियों का धर्म) एक विशेष नाम, ज़ोरोआस्टर की गुलामी है। वेदान्त शब्द किसी विशेष व्यक्तित्व या मनुष्य की गुलामी नहीं है। वेदान्त शब्द का शब्दार्थ है ज्ञान का अन्त या लक्ष्य। वेदान्त शब्द का अर्थ है सत्य, और इस प्रकार साम्प्रदायिकता का उसमें अंश तक भी नहीं है। वह सार्व-भौम है। उसका नाम आप से अपरिचित होने के कारण, तुम उसके विद्वेषी न बन जाओ। तुम उसे सत्य कह सकते हो जैसा कि हिन्दुओं ने समझा और प्रचार किया है। तुम जानते हो सम्पूर्ण सत्य, जर्मनी या अमेरिका में, कहीं भी उसका अनुसन्धान हुआ हो, उसी एक परिणाम पर ही पहुँचता है। जहां कहीं भी मनुष्य सूर्य की ओर देखता है, वह उसे उज्ज्वल और प्रभापूर्ण देखता है। जो कोई अपने

पक्षपातों को दूर हटा देगा और उनसे मुक्त होजायगा, वह वेदान्त के सिद्धान्तों से सहमत होगा। ये तुम्हारे अपने परिणाम हैं, ये तुम्हारे अपने तर्क और निष्कर्ष हैं, यदि तुम सब मत्सरों, पहले की धारणाओं और पूर्वानुरक्तियों को त्याग कर, खुले दिलसे, उदारता-पूर्वक विचार करो।

अब माया की इस समस्या को राम तुम्हें हिन्दुओं के ढंग से समझावेगा कि जिस प्रकार उसे उन्हों ने अपने प्राचीन धर्मग्रन्थों में बयान किया तथा समझाया है। वे व्यवहारतः उसे प्रयोग द्वारा समझाते हैं। वे इस माया को अनिर्वचनीय कहते हैं, जिस का परिमित अर्थ तो भ्रान्ति है, परन्तु इस माया शब्द की व्याख्या है ऐसी कोई वस्तु कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता, जो (माया) न सत्य कही जा सकती है और न असत्य कही जा सकती है, और जो सत्य तथा असत्य का मेल भी नहीं है। यह सम्पूर्ण संसार माया या भ्रांति है, और यह भ्रांति दो प्रकार की है। हम उसे बाह्य और आन्तरिक भ्रान्ति कह सकते हैं।

मान लो कि अंधेरे में तुमने एक सर्प देखा। मारे डर के तुम्हारे प्राण निकल गये, तुम गिर पड़े और चोट खा गये। क्या साँप था? क्या साँप सत्य था? वेदान्त कहता है कि सर्प सत्य नहीं है, क्योंकि बाद को जब तुम स्थान पर जाते हो जहाँ पर साँप था, तब वह वहां नहीं होता। किन्तु क्या सर्प असत्य है? वेदान्त कहता है, 'नहीं, नहीं।' तुम्हें सर्प को असत्य कहने का कोई हक नहीं है। यदि साँप असत्य होता तो तुम्हें चोट न लगती। सर्प एक भ्रान्ति है, और कोई भ्रान्ति सत्य नहीं है, और न वह असत्य है, क्योंकि असत्य का अर्थ है कोई

ऐसी वस्तु जिसका अस्तित्व कभी नहीं प्रतीत होता। तुम एक इन्द्रधनुष देखते हो। क्या इन्द्र धनुष सत्य है? इन्द्र-धनुष सत्य नहीं है, क्योंकि जब हम उसके स्थान पर पहुँचते हैं, तब हम उसे नहीं पाते, और यदि हम अपनी स्थिति बदल दें, तो हम इन्द्रधनुष की स्थिति भी बदली हुई पावेंगे। क्या वह असत्य है? नहीं, नहीं, क्योंकि वहां उसका अस्तित्व प्रतीत होता है, उसका हम पर कुछ प्रभाव पड़ता है। वह असत्य भी नहीं है। वह एक भ्रांन्ति है।

तुम दर्पण में अपनी तसवीर देखते हो। क्या तुम्हारी तसवीर असत्य है? वेदान्त कहता है, "नहीं, वह असत्य नहीं है, क्योंकि वह तुम पर एक असर पैदा करती है, तुम उसे देखते हो।" क्या वह सत्य है? नहीं, वह सत्य भी नहीं है। तुम ने इधर अपना मुँह फेरा और उधर वह गायब। यह एक भ्रान्ति है। अब यह भ्रान्ति दो प्रकार की है, भीतरी और बाहरी। भीतरी भ्रान्ति वह, जैसे रस्सी का सर्प समझ पड़ना। आन्तरिक भ्रान्ति की एक विशेषता यह है कि जब वहां भ्रान्तिकारी वस्तु होती है, तब असली वस्तु वहां नहीं दिखाई पड़ती है, और जब (असली) वस्तु दिखाई पड़ती है, तब भ्रान्तिकारी वस्तु वहां नहीं होती। दोनों साथ नहीं रह सकतीं, आन्तरिक भ्रान्ति में वास्तविकता और भ्रान्ति संग नहीं रह सकते। भ्रान्तिकारी वस्तु सर्प को, और उस के पीछे (आधार) की असली वस्तु रस्सी को हम एक साथ नहीं देख सकते। यदि सर्प वहां है तो रस्सी वहां नहीं है। और यदि रस्सी वहां है तो साँप वहां नहीं है। दो में से एक को मिटना ही होगा। दो में से एक की मौजूदगी ज़रूर रहेगी।

किन्तु बाहरी भ्रान्ति में दोनों संग रहते हैं, असलियत भी और भ्रान्ति भी। दोनों एक साथ रह सकते हैं, जैसे शीशे में। शीशे के अन्दर की वस्तु, प्रतिबिम्ब असत्य है, अथवा, वैज्ञानिकों की भाषा में, वह एक सार्वभौम प्रतिबिम्ब है, असत्य प्रतिमूर्ति है, भ्रान्ति है। चेहरा असली वस्तु है। अब मुख और उसका प्रतिरूप साथ हैं। भ्रान्तिकारी वस्तु अर्थात् प्रतिबिम्ब और असली वस्तु अर्थात् मुख संग हैं। यह बाहरी भ्रान्ति की विशेषता है। बाहरी भ्रान्ति के संबंध में हम एक बात और देखते हैं, एक निमित्त वा द्वार (medinm) दिखाई पड़ता है, शीशे के समान बिचवानी (माध्यम)। दर्पण माध्यम (निमित्त वा साधन) है, और भ्रान्तिकारी वस्तु प्रतिबिम्ब है, और वास्तविक वस्तु मुख है। इस प्रकार वास्तव में एक बाहरी भ्रान्ति में, तीन चीज़ें एक साथ ही मौजूद हैं; और भीतरी भ्रान्ति में एक ही वस्तु उस समय उपस्थित है।

वेदान्तियों के अनुभव वा प्रयोग जो समग्र विश्व की एकता आपके सामने सिद्ध करते हैं, जिस प्रकार के हैं वह आपको बताया जायगा। उनके प्रयोग, अनुभव और उनके धार्मिक विकास तथा सत्य के अनुभव से सिद्ध होता है कि यह संसार भीतरी और बाहरी दोनों प्रकारों की भ्रान्तियों से बना हुआ है। जब कोई मनुष्य धार्मिक जीवन और अपने अन्दर परमात्मा का अनुभव करना शुरू करता है, तब वह केवल बाहरी भ्रान्ति पर विजय प्राप्त करता है। पृथ्वीतलके सब धर्मों अर्थात् ईसाइयत, मुसलमानी, बौद्धता, ज़ोरोआस्टरी, इन सब ने, वेदान्त को छोड़ कर, बाहरी भ्रान्ति को जीतने में बड़ा काम किया है। वे जहां

तक बाहरी भ्रान्ति को जीतते हैं, तहां तक वेदान्त कहता है वे बहुत ठीक हैं। किन्तु वेदान्त एक पग आगे जाता है। वह आन्तरिक भ्रान्ति को भी जीतता है, और दूसरे धर्म प्रायः वहां पर पीछे ठिठक जाते हैं। तब वे कहते हैं कि वेदान्त हमारे विरुद्ध है। नहीं, नहीं, वह विरुद्ध नहीं है। वह केवल उसी(कर्म) की पूर्ति करता है जिसे उन्होंने (उक्त धर्मों ने) शुरू किया था। वह उनकी अभिवृद्धि करता है। वह उनका प्रतिद्वंद्वी नहीं है, वह उनका विरोधी नहीं है। किन्तु तुम कहोगे कि यह तो हम से संस्कृत में बोलना है, यह तो हम से यूनानी भाषा में बोलना है। इस से तुम्हारा क्या प्रयोजन है?

अब एक अत्यन्त सूक्ष्म बात कही जाने वाली है। इसी लिये बड़ी सावधानी से आप ध्यान दें। एक रस्सी को भ्रमवश साँप या भुजंग समझा जाता है। रस्सी में वहां सांप प्रगट हो गया। किस प्रकार की भ्रान्ति सर्प का कारण थी? सर्प आन्तरिक भ्रान्तिजन्य था। तुम जानते हो कि यदि साँप वहां है, तो रस्सी वहां नहीं हो सकती; यदि रस्सी वहाँ है तो साँप वहां नहीं हो सकता। एक समय में केवल एक ही चीज़ दिखाई पड़ती है। यह है भीतरी भ्रान्ति। फिर आप खयाल करें। यह सर्प या भुजंग जो प्रगट हुआ था एक भ्रान्ति मूलक पदार्थ था। उसके अस्तित्व का कारण आन्तरिक भ्रान्ति थी। यह साँप अपने पीछे (आधार-रूप से) स्थित रस्सी का वही काम देता है जो काम शीशा तुम्हें उस समय देता है जब कि तुम उसमें देखते हो। यह तुम्हारे लिये साबित करना है। तुम जानते हो कि शीशा निमित्त वा माध्यम रूप से तुम्हारा काम देता है, और

शीशे के माध्यम होने से, तुम शीशे में एक भ्रान्तिमूलक पदार्थ—मैं कहता हूं—एक प्रतिविम्ब देखते हो। शीशे के मामले में तुम्हें एक बाहरी भ्रान्ति मिलती है। अब यह दिखाया जायगा कि आन्तरिक भ्रान्ति के कारण रस्सी में साँप प्रगट हुआ था। यह साँप अपने नीचे स्थित वास्तविकता या रस्सी के माध्यम अथवा शीशे का काम देगा, और उसी स्थान पर हमें बाहरी भ्रान्ति भी मिलेगी।

एक लड़का तुम्हारे पास आकर कहता है, "पिता, पिता, मैं डर गया हूं, वहां साँप है।" हम पूछते हैं, "बच्चे! साँप कितना लम्बा था?" लड़का कहता है "साँप लगभग दो गज़ लम्बा था"। अच्छा, साँप मोटा कितना था? बच्चा कहता है, "बहुत मोटा था। वह उस तार का सा मोटा था जो मैं ने उस दिन उस जहाज़ में देखी थी कि जो सैन-फ्रांसिस्को से चलने को था"। हम पूछते हैं, "अच्छा, साँप क्या कर रहा था? उसने कहा, "साँप ने गेंडरी मार ली थी"। तुम जानते हो कि साँप वहां नहीं था। साँप मिथ्या था, रस्सी वहां पड़ी हुई थी। रस्सी करीब दो गज़ लम्बी थी, और उतनी ही मोटी थी जितनी कि वह तार जो उस ने उस दिन देखी थी जब कि जहाज़ सैनफ्रांसिस्को से रवाना हो रहा था। रस्सी भूतल पर लिपटी पड़ी थी, और मानो रस्सी के गुणों ने—उसकी मोटाई, लम्बाई, और स्थिति—अपने को भ्रान्ति मूलक साँप में प्रतिबिम्बित किया। रस्सी अपनी मोटाई, अपनी चौड़ाई, और अपनी स्थिति भ्रान्तिमूलक साँप में डालती है। साँप इतना लम्बा नहीं था, लम्बाई तो सिर्फ रस्सी की थी। साँप उतना मोटा नहीं था, मोटाई तो केवल रस्सी की थी। साँप उस स्थिति में नहीं

था, वह स्थिति तो केवल रस्सी की थी। अतः आप खयाल करें कि पहले तो भीतरी भ्रान्ति के कारण हमें साँप मिला था, और वाद को सर्प में हमने दूसरे प्रकार की भ्रान्ति की सृष्टि की, जिसे हम वाहरी भ्रान्ति कह सकते हैं। एक के गुणों का आरोप दूसरे पर हो गया।

यह दूसरे प्रकार की भ्रान्ति है। इन भ्रान्तियों को हटाने के लिये कौन सी क्रिया अंगीकार की जाय? पहले एक भ्रान्ति को हम हटावेंगे, तव दूसरी को। पहले वाहरी भ्रान्ति हटाई जायगी, और तव भीतरी भ्रान्ति।

वेदान्त के अनुसार, यह सम्पूर्ण विश्व वास्तव में केवल एक अविभाज्य (indivisible, अनिर्वचनीय (indescribable), सत्य के सिवाय और कुछ नहीं है. जिसे हम सत्य भी नहीं कह सकते. जो वाणी से परे है, जो देश काल वस्तु से परे है, जो सब से परे है। सत्य की इस रस्सी में, इस भीतरस्थित आधार में, तत्त्व में, अथवा जो चाहो तुम इसे कहो, उस में नामों, रूपों, और भेदों का, अथवा तुम कह सकते हो तेज, कार्य-शालता वा स्फुरणा का, आविर्भाव होता है। ये सब सर्प के तुल्य हैं। वहां हम देखते हैं कि यह भीतरी भ्रान्ति पूर्ण होने के वाद वाहरी भ्रान्ति आती है, और वाहरी भ्रान्ति के कारण हम समझते हैं कि इन नाम और रूपों, इन व्यक्तियों और सत्ताओं में अपनी निज की एक वास्तविकता है, ये नामरूपादि मानों अपने आप पर निर्भर (जीवित) स्वतः स्थित, और अपने ही कारण सत्य हैं। यह दूसरी या वाहरी भ्रान्ति पेश की गई। अव तुम इसे समझोगे जव हम विधि को उलट देंगे।

धर्मों (मतों)ने क्या किया है? चाहे प्यारी ईसाइयत, प्यारी

मुसलमानी की प्रशंसा में, और चाहे इन धर्मों की प्रशंसा में यह कहा जाय कि वाहरी भ्रान्ति को दूर करने में इन धर्मों ने बड़ा काम किया है । इन्हों ने मानवजाति को दिखलाया है कि यदि वे शुद्ध जीवन निर्वाह करें; यदि उनका जीवन सार्वभौम प्रेम का, दैवी आनन्द का जीवन हो; यदि मनुष्य आशा, श्रद्धा, और उदारता का जीवन जिये; यदि उस से असीम प्रेम चारों ओर उमड़ कर समग्र विश्व को परमेश्वरता से परिपूर्ण कर दे; तो हमें हरेक वस्तु में परमेश्वर मिल जाय । ज़रा ध्यान दो। सच्चा साधु या सन्त, सच्चा ईसाई, प्यारा ईसाई, नामों में भी परमेश्वर को देखता है। वह शत्रु से घृणा नहीं करता है, बल्कि शत्रु को प्यार करता है।

"Oh! Love your enemy as your self"

अरे ! "अपने शत्रु को आत्मवत् प्यार करो।" ईसू की यह शिक्षा धन्य है ! फूलों में भी वह उसी परमेश्वर के दर्शन करता है। कभी तुमने उस अवस्था का अनुभव किया? सच्चे धार्मिक लोगों ने किया है। फूल तुमसे बोलते हैं, और पत्थरों में तुम्हें धर्मोपदेश मिलते हैं, बहते हुए नालों में पुस्तकें, तारागण तुमसे वार्तालाप करते हैं. और परमेश्वर एक मनुष्य के चेहरे के द्वारा तुम्हें अवलोकता है। क्या परमेश्वर को किसी बुद्धिजन्य प्रमाण की ज़रूरत है? नहीं, वह अपना प्रमाण अपने साथ रखता है। वह उस प्रमाण पर टिका हुआ है, जो सम्पूर्ण लौकिक तर्कशास्त्र और लौकिक तत्वज्ञान के परे है। जो मनुष्य सर्वत्र परमेश्वर का अनुभव करता है, वह परमेश्वर में ही रहता सहता, चलता फिरता है, और अपनी सत्ता रखता है। वह इस प्रकार के

धार्मिक जीवन, अभ्यास और अनुभव तथा, प्रयोगों द्वारा, बाहरी भ्रान्ति को जीत लेता है। वह कैसे ? तुम जानते हो, तुम्हारा कहना है कि परमेश्वर इन सब रूपों में है, परमेश्वर इन सब अवस्थाओं और आकारों और प्रभेदों में है। ये सब सांप के तुल्य हैं। तथापि यदि तुम उनके पीछे देखो, तो उनके परे तुम्हें साँप के नीचे अधोस्थित रस्सी दिखाई पड़ती है। लम्बाई चौड़ाई और गोलाई का आरोप तुम साँप पर नहीं करते हो, अधोस्थित रस्सी पर करते हो। इस में तुम केवल एक प्रकार की भ्रान्ति को हटाते हो। तुम हरेक वस्तु के पीछे परमेश्वर देखते हो, और धार्मिक जीवन की इस अवस्था की जब तुम्हें उपलब्धि होती है, तब तुम अपने मित्रों या शत्रुओं पर कारणों का आरोपण नहीं करते, किन्तु तुम उन में परमेश्वरता देखते हो, और तुम उनके पीछे परमेश्वरकी अंगुली या जगन्नियन्ता की अंगुली देखते हो; और तुम कहते हो कि एक परमेश्वरता, या एक सर्वात्मा जो परमेश्वर है, वह ये सब काम कर रहा है और मुझे अपने मित्रों पर हेतु या कारणों का आरोपण नहीं करना चाहिये। इस में एक प्रकार की भ्रान्ति, बाहरी भ्रान्ति, परास्त हुई। तुम्हारी उन्नति में यह एक पग है। किन्तु वेदान्त इस से आगे बढ़ता है और तुम से कहता है, "भाई, यदि तुम कहते हो कि परमेश्वर इन सब में है, तो यह पूर्ण सत्य नहीं है, इस से आगे बढ़ो।" ये सब रूप और ये सब प्रतिमाएँ और भेद या प्रभेद स्वयं परमेश्वर को धारण करते हैं, किन्तु साथ ही ये सब विभिन्न भ्रान्तियां और रूप मिथ्या हैं और रस्सी में साँप के तुल्य हैं। इस से आगे बढ़ो, और तुम उस अवस्था को प्राप्त होते हो कि जो इन सब (बातों) से परे है, जो सम्पूर्ण कल्पना से परे है, और सब शब्दों से परे है।

यह असत्य भी है। इस प्रकार तुम देखते हो कि वेदान्त सब धर्मों का परिपूरक है। यह संसार के किसी धर्म का खण्डन नहीं करता।

यह दिखाया जायगा कि यह कहना अनावश्यक है कि "यह संसार इस परमेश्वर ने, या उस परमेश्वर ने, अवश्य रचा होगा"। वह सिद्ध किया जायगा कि ये रूप और शक्लें, ये विभिन्न आकृतियां और स्थितियां ही यह दुनिया है, और दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

ये दो त्रिकोण (triangles) हैं, और एक समकोण
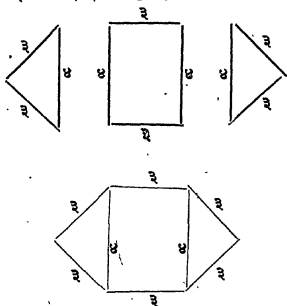
(rectangle)। ये दोनों त्रिकोण समद्विभुज (isosceles) हैं, दो भुजायें बराबर हैं। दोनों समान भुजायें अंक ३ से चिह्नित हैं, और तीसरी भुजायें ४ से। समकोण में छोटे पार्श्व (sides)

३ से चिह्नित हैं और लम्बे पार्श्व ४ से। ये आकृतियां कागज़ या दफती या किसी वस्तु की कटी हुई हैं। इन को इस तरह पर रखो कि एक संयुक्त आकृति हो जाय, अथवा त्रिकोण की जड़ (वा तले) का और समकोण की एक तरफ का संग हो जाय। तब वह क्या हो जायगा? तब एक षटकोण (hexagon) हम पाते हैं, जिस के सब पार्श्व ३ हैं। ४ अंकित पार्श्व आकृति के भीतर आ गये और अब वे पार्श्व नहीं रह गये हैं। यह षटकोण हम कैसे पाते हैं? त्रिकोण और समकोण की भिन्न प्रकार की स्थिति या भिन्न प्रकार के संयोग से हमें इस की प्राप्ति होती है। इन आकृतियों और इन से बनने वाली आकृति के गुणों का क्या हाल है? परिणामभूत आकृति के गुण उस में शामिल आकृतियों के गुणों से बिलकुल भिन्न हैं। अंशाकृतियों में तीक्ष्ण कोण (acute angles) हैं, परिणामभूत आकृति में तीक्ष्ण कोण बिलकुल है ही नहीं। एक अंशाकृति में ऋजु कोण (right angles) हैं, और परिणामभूत आकृति में कोई भी ऋजु कोण नहीं है।

अंशाकृतियों में ४ से चिह्नित लम्बे पार्श्व (sides) थे; परिणामभूत आकृति में उतनी लम्बाई की कोई दिशा (तर्फ) नहीं है। अंशाकृतियां कोई भी समपार्श्व (equilateral) नहीं थीं। उनके संयोग से बनने वाली आकृति समपार्श्व है, उस के सब कोण बहिर्लम्ब (obtuse) हैं। किसी भी आंशिक भाग के कोण बहिर्लम्ब नहीं थे। यहां हम एक ऐसी सृष्टि देख रहे हैं, जिस के सब गुण पहले बिलकुल अज्ञात थे। ये बिलकुल नये गुण कहां से आ गये? तनिक ध्यान दीजिये इन निरानिर नये गुणों की सृष्टि किसी सृष्टिकर्त्ता ने नहीं की

है। ये बिलकुल नये गुण घटकावयव (components parts) से नहीं आये हैं । वे एक नवीन रूप का नतीजा हैं। वे एक नवीन स्थिति, नवीन आकार का, जिसे वेदान्त माया कहता है, परिणाम हैं। माया का अर्थ है नाम और रूप। वे (गुण) नामों और रूपों का परिमाण हैं, यह खयाल कर लो। फिर देखो। इस त्रिकोण को ज (एच), जलजनकवायु (हाइड्रोजेन) होने दो; इस दूसरे को २ और तीसरे को ओ (oxygen) होने दो । इस से तुम को ज २ ओ, जल की प्राप्ति होती है। इन दो मूल तत्वों,हाइड्रोजेन और ओक्सीजेन (एक प्रकार की वायु) में अपने२ निजी गुण थे, और परिणामभूत योग एक निरानिर नवीन वस्तु है। हाइड्रोजेन और ओक्सीजेन हमें जल देता है। हाइड्रोजेन भभक उठनेवाला पदार्थ है, किन्तु जल ऐसा नहीं है। जल में एक ऐसा गुण है जिस से हाइड्रोजेन बिलकुल अनभिज्ञ है। ओक्सीजेन ज्वलन का सहायक है,किन्तु पानी ऐसी सहायता नहीं करता। उस में अपना निजी एक गुण है,बिलकुल नया। फिर हम देखते हैं कि हाइड्रोजेन बहुत हलका है, किन्तु ओक्सीजन में वैसा हलकापन नहीं है । हाइड्रोजेन गुब्बारों में भर जाता है और तुम्हें ऊपर आकाश में चढ़ा ले जाता है; किन्तु जल, परिणामभूत योग,ऐसा नहीं करता। अवयवरूप तत्वों के गुण परिणामभूत योग से बिलकुल विभिन्न हैं । परिणामभूत योग को अपने गुणों की प्राप्ति कहां से हुई? उसको ये गुण अपने रचयिता से मिले या अवयवों से? नहीं, वे रूप से, नये रूप से, नवीन स्थिति से, आकार से आये। यह है जो हमें वेदान्त बतलाता है। यह तुम्हें बताता है कि जो कुछ तुम इस संसार में देखते हो, वह नाम और रूप का परिणाम मात्र है। इसके और उसके

लिये, जो नाम और रूप का परिणाम हैं, तुम्हें एक सृष्टिकर्त्ता की स्थापना करने की ज़रूरत नहीं है।

यह तुम्हारे सामने कोयले का एक टुकड़ा है और यहां जगमगा, चमकीला हीरा है। कोयले के टुकड़े के गुणों से बिलकुल भिन्न गुण हीरे में हैं। हीरा इतना कठोर है कि लोहे को काट सकता है। कोयला इतना कोमल है कि जब तुम कागज़ पर उसे रगड़ देते हो, तब कागज़ के टुकड़े पर उस का निशान लग जाता है। हीरा इतना अमूल्य, बहुमूल्य और प्रभा पूर्ण है; और कोयले का टुकड़ा सस्ता, कुरूप, और काला है। दोनों के भेद पर ध्यान दो, और तथापि वास्तव में वे दोनों एक और वही वस्तु हैं। विज्ञान से यह सिद्ध है। अजी, आप कहोगे, "मेरी बुद्धि में यह न समा-यगा।" आप चाहे इसे मानो या न मानो, यह एक तथ्य है। इसी तरह वेदान्त आप से कहता है कि यह एक बुरी वस्तु है, और यह एक अच्छी वस्तु है। हीरा अच्छा है और कोयला खराब है। यह एक वस्तु है जिसे तुम खराब कहते हो, और यह एक वस्तु है जिसे तुम अच्छा कहते हो। यह एक वस्तु है जिसे तुम मित्र कहते हो और यह एक वस्तु है जिसे तुम अरि (शत्रु) बताते हो। किन्तु वास्तव में उनके नीचे एक और वही वस्तु स्थित है, ठीक जैसे कि वही कार्बन (carbon) कोयले के रूपमें प्रगट होता है और वही हीरे में। सो वास्तव में एक और वही ईश्वरता है जो दोनों स्थानों में प्रकट होती है। नाम और रूप में भेद है, और किसी बात में नहीं। वैज्ञानिक तुम्हें बताते हैं, कि कार्बन के कण कोयले की अपेक्षा हीरे में भिन्न प्रकार से स्थित हैं, हीरे के अणुओं के बनाने में

भिन्न रूप के होते हैं। हीरे और कोयले में भेद नाम और रूप के कारण से है, या उस कारण से है जिसे हिन्दू माया कहते हैं। ये सब भेद नाम और रूप के कारण से है।

इसी तरह अच्छे और बुरे के भेद का कारण माया, नाम और रूप है, और कुछ नहीं; और ये नाम और रूप सत्य नहीं हैं क्योंकि वे अनित्य हैं। वे मिथ्या हैं, क्योंकि हम उन्हें एक समय देखते हैं और दूसरे समय नहीं देखते। पृथ्वी का यह अद्भुत व्यापार नामों और रूपों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है; विभेदों, परिवर्तनों और संयोगों के सिवाय और कुछ नहीं है। और इन विभिन्न परिवर्तनों तथा संयोगों का कारण क्या है? उनका कारण है आन्तरिक भ्रांति। आन्तरिक भ्रान्तिमूलक इन नाम-रूपोंमें एक ब्रह्म अपने को प्रकट करता है। संसारके नामों और रूपोंमें,जो माया कहलाते हैं,परमेश्वर आप स्वयं आविर्भूत होता है। इस का कारण है भीतरी भ्रान्ति। उस के पार जाओ, और तुम सब कुछ हो जाते हो। वही वास्तव में देखता है जो सब में समान देखता है। उसी मनुष्य की आंखें खुली हुई हैं जो सब में एकसां एक परमेश्वर को देखता है।

गीता की कुछ पंक्तियां इसे तुम्हारे लिये और स्पष्ट कर देंगी।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥
पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक साम यजुरेव च॥
गतिर्भर्ता, प्रभु साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥
तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥

"I am the sacrifice! I am the prayer!
I am of all this boundless Universe
The Father, Mother, Ancestor and God!
The end of Learning! That which purifies
In lustral water! I am Om! I am
Rig, Sama and Yajur. I am
The way, The Fosterer, the Lord, the Judge,
The Witness; the Abode, the Refuge-house,
The friend, the Fountain and the Sea of Life,
Which sends, and swallows up seed and seed-sower,
Whence endless harvests spring! Sun's heat is mine,
Heaven's rain is mine to grant or to withhold;
Death am I and immortal Life I am!"

"मैं यज्ञ हूं; मैं प्रार्थी हूं!
इस असीम विश्व का मैं
जनक, जननी, पूर्व पुरुष और परमेश्वर,
ज्ञान की पराकाष्ठा हूं!" वह जो।
शुचिकर जल में पवित्रकारी ॐ है। वह ॐ मैं हूं।
मैं ऋक्, साम और यजुर हूं।
मै हूं मार्ग, प्रतिपालक, प्रभु, न्यायाधीश,
गवाह, निवास-स्थान, शरण—निकेत,
मित्र, जीवन का मूल सोता और समुद्र,
जो बीज और बीज-बोने वाले को भेजता है, और निगल जाता है।

जहां से अनन्त फसलें पैदा होती हैं ! सूर्य का ताप मेरा है,
आकाश की वर्षा मेरी है, चाहे दूं या रोकूं;
मृत्यु मैं हूं, और अमर जीवन मैं हूं !"

The melodious song of the Ganges,
the music of the waving pine,
The echoes of the Ocean's war,
the lowing of the kine,
The liquid drops of dew,
The heavy lowering cloud,
The patter of the tiny feet,
The laughter of the crowd,
The golden beam of the Sun,
The twinkle of the silent star,
The shimmering light of the silvery moon
shedding lustre near and far
The flash of the flaming sword,
the sparkle of jewels bright,
The gleam of the light-house-beacon light
in the dark and foggy night,
The apple-bosomed Earth
and Heaven's glorious wealth,
The Soundless sound, the flameless light,
The darkless dark, the wingless flight,
The mindless thought, the eyeless sight,
The mouthless talk, the handless grasp
so tight,

Am I, am I, am I.

गंगा का मधुर गान,
लहराते हुए देवदारु का संगीत,
सागर के समर की प्रतिध्वनियां,
गड्ढों का वँधाना,
ओस के तरल वूंद,
भारी अधोगामी मेघ,
नन्हे पैरों की पटक,
समूह की हास्यध्वनि,
सूर्य की सुनहली किरण,
मौन नक्षत्र की चमक,
रूपहले चन्द्र का कपकपता (लचकता) प्रकाश।
जो निकट और दूर उजियाला डाल रहा है।
लपलपाती तलवार की दमक,
चमकीले रत्नों की छटा,
अँधेरी और कोहरेदार रात में,
प्रकाश-गृह के मार्ग-प्रदर्शक प्रकाश की ज्योति
अपने गर्भ में सेव धारण करने वाली भूमि
और वैकुण्ठ की उज्वल दौलत।
निश्शब्द शब्द, विना लौ का प्रकाश,
अन्धकार रहित अन्धकार, और
पंखहीन उड़ान,
मनहीन विचार, नेत्रहीन दृष्टि,
मुखहीन वातचीत, हस्तहीन अति दृढ़
पकड़ (दवोच),
मैं हूं, मैं हूं, मैं हूं।

संसार का आरम्भ कब हुआ ?

बुधवार, ६ अप्रैल १९०४ का भाषण।

महिलाओं और सज्जनों के रूप में प्यारे भगवन् !

प्रश्न किया जाता है, दुनिया कब शुरू हुई थी ? 'कब' की व्याख्या देखने पर हमें मालूम होता है 'कौन समय'। अतः प्रश्न यह है—किस समय समय का आरम्भ हुआ था ? प्रश्न इस रूप में रक्खा जाने पर, अवश्य हास्यप्रद है। दुनिया कहां शुरू हुई थी ? स्थान कहां शुरू हुआ था ? यह भी प्रश्न है, 'दुनिया कैसे शुरू हुई थी ?" कुछ चटक (फुरतीले) लोग सम्भव है इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करें। किन्तु मैं इसे उनके लिये छोड़ दूँगा। यह काम मेरी शक्ति से परे है। कुछ लोग ऐसे हैं जो इन प्रश्नों को हल करने में अपने दिन वितावेंगे। किन्तु इस से होता ही क्या है ! एक हद तक पहुँच कर वे ऐसे ठहर जाते हैं कि मानो एक नितान्त कठिन (वज्रमय) पत्थर की दीवार सामने आ गई होती है।

अब यहां मेरे पास एक चिमटा है। इस और उस तथा अन्य चीज़ों को दवा कर वह चिमटा उठा सकता है, किन्तु वह उलट कर उस हाथ को नहीं दवोच सकता जो उसे पकड़े है और परिचालित करता है। इसी तरह काल, स्थान, और कारण (देश, काल, वस्तु) की त्रिमूर्ति संसार के व्यापार को धारण कर सकती है, किन्तु जो आत्मा

उसके पीछे है उसे वह धर (पकड़ नहीं सकती ।

एक बार चार मनुष्य अस्पताल पहुँचाये गये थे, क्योंकि उनकी आंखों में मोतियाबिन्द था। उन्हें आशा थी कि नश्तर द्वारा अस्पताल में मोतियाबिन्द अच्छा हो जायगा। मोतियाबिन्द से पीड़ित ये सब लोग स्वभावतः बज्र अन्धे थे, और उनकी अब चार ही इन्द्रियां बाकी रह गई थीं। एक दिन वे खिड़की के काँच के रंग के सम्बन्ध में विवाद करने लगे। एक ने कहा, "मेरा लड़का जो विश्वविद्यालय का छात्र है यहां आया था और मुझसे कहा था कि 'कांच पीला है।' वह अवश्य पीला होगा।" दूसरे ने कहा, "मेरा चाचा, जो म्यूनीसिपल कमिश्नर है, उस दिन यहां आया था और मुझसे कहा था कि 'कांच सुर्ख है।' वह बड़ा तेज़ है और उसे मालूम है।" तब तीसरे ने कहा कि "मेरा एक चचेरा भाई, जो विश्वविद्यालय में अध्यापक है, मुझे देखने आया था और तब उसने मुझसे कहा था कि 'कांच हरा है'। अवश्य ही वह जानता होगा'। इस तरह वे काँच के रंग के सम्बन्ध में परस्पर झगड़े। तदुपरान्त उन्हों ने स्वयं इस को जानने का प्रयत्न शुरु किया कि शीशा किस रंग का है। पहले उन्हों ने अपनी जीभ उस पर लगाई, और स्वाद लेने का प्रयत्न किया। किन्तु रंग इस उपाय से नहीं जाना जा सकता था। तब उन्हों ने उसे थपथपाया और आवाज़ सुनी। किन्तु रँग का पता इस ढंग से भी न लगा। उन्हों ने उसे सूँघने का यत्न किया और उसे टटोला, किन्तु खेद! उन की छूने,सूँघने,सुनने और चखने की इन्द्रियां उन्हें नहीं बता सकीं कि कांच किस रंग का है। इसी प्रकार अनन्त को हम इन्द्रियों के द्वारा नहीं जान सकते। तनिक

देखिये कि यह कैसी असम्भव बात होगी; यदि अनन्त को आप इन्द्रियों के द्वारा जान सके। तब तो अनन्त को सान्तसे अवश्य छोटा होना पड़ेगा। अनर्थ (absurd)। केवल विश्वज्ञान (Cosmic Consciousness) रूपी परमेश्वर ज्ञान (God consciousness) द्वारा ही हम अनन्त को जानते हैं। यह दियासलाई अपने हाथ में लेता हूं। दियासलाई उस हाथ से छोटी है जो उसे पकड़े है। अब आप देखते हैं कि क्योंकर सान्त अनन्त (वा परिच्छिन्न अपरिच्छिन्न) को नहीं ग्रहण कर सकता? इन्द्रियां उसे नहीं जान सकतीं जो उन से परे है। उन अंधों की भाँति,(जिन्हें काँच का रंग बताया गया था, किन्तु खुद नहीं जानते थे कि वह किस रंग का है और जिन्हों ने भाई या लड़के के कथनानुसार उसे लाल पीला आदि मान रक्खा था), अपने से बाहर की किसी वस्तु पर न निर्भर करो कि वह तुम्हारे लिये आत्मा को व्यक्त कर देगी। मुझे बताया गया है कि ह ओ (H O)
२ २
पानी पैदा करता है। मैं क्या यह जानता हूं? नहीं, यद्यपि सब रासायनिक मुझे बताते हैं कि यह सत्य है। मैं केवल तभी जानता हूं जब खुद प्रयोगशाला में जाकर प्रयोग कर चुकता हूं। तभी यह वास्तविक तथ्य मेरे लिये हो जाता है। कृष्ण, ईसा, या बुद्ध कोई भी हो, आप अपने से बाहर के किसी प्रमाण पर नहीं भरोसा कर सकते। उसे जानने के लिये तुम्हें स्वयं उसे अवश्य जानना होगा। तुम्हें चाहे किसी अच्छे प्रामाणिक सूत्र से मालूम हुआ हो, उदाहरणार्थ अध्यापक से, कि काँच सुख है, किन्तु इसे जानने के लिये तुम्हें उसे देखना होगा। एक युवा पुरुष कहता है, "मेरे बाप का पेट अच्छा है, वह मेरा भोजन मेरे बदले पचा

सकता है।" क्या वह पचा सकता है? नहीं, लड़के को अपना भोजन आप पचाना पड़ेगा। मैं उन महान् आत्माओं को प्रणाम करता हूं जो संसार-विख्यात हैं, किन्तु वे मेरा भोजन मेरे बदले नहीं पचा सकते। सो तो मुझे स्वयं ही अपने लिये करना होगा। परमेश्वर से मेरी अभिन्नता का वे (महात्मा लोग) मुझे विश्वास नहीं दिला सकते, मुझे स्वयं यह अपने लिये करना होगा। सत्य को तो हम केवल विश्व के ज्ञान ही से जानते हैं। इस के बारे में मैं तुम्हें बाद को बताऊंगा।

नास्तिक और स्वाधीन चितन्क (free thinkers) कहते हैं, "मैं स्वयं अपने लिये अनुसन्धान कर लूंगा," और हम देखते हैं कि वे कहां तक पहुँचते हैं। वह कहता है कि रोशनी इस दियासलाई में है। अब हम उस का पता कहां पावें? इस लिये वह दियासलाई के टुकड़े २ कर डालता है, किन्तु प्रकाश नहीं पाता। फिर वह उस की बुकनी (चूर्ण) बना देता है, तथापि रोशनी उसे नहीं मिलती। वह शरीर को लेकर खंड खंड कर देता है, पर जीवन (प्राण) नहीं मिलता। वह हड्डियों को चूर चूर कर डालता है, परन्तु ज़िन्दगी वहां भी नहीं है। वह कहता है कि यदि कोई "वास्तविकता" (तत्त्व) है, तो वह मैं ही हूँ, परन्तु वह अक्षय है। जहां तक वह पहुँचा है वह ठीक है। किन्तु अभी तक विश्व-बोध उस ने विकसित नहीं किया है, अनन्त को जानने के लिये उसने पूर्णतया स्थानीय ज्ञान (अपने परिच्छिन्न ज्ञान) से काम लिया है। परन्तु यह स्पष्ट है कि इस तरह से वह उसे कदापि नहीं जान सकता। अब हम देखें कि "बुद्धि से हम अनन्त तक पहुँच सकते

हैं, और जान सकते हैं कि एक अनन्त है, परन्तु हम नहीं कह सकते कि वह क्या है। वैसे ही जैसे कि जब पीछे से आकर एक मनुष्य मेरी आँखें मीच लेता है, तो मैं जानता हूं कि यहां कोई है, और अवश्य ही वह कोई मित्र होगा, क्योंकि कोई अपरिचित ऐसा करने की धृष्टता न करेगा, परन्तु मैं नहीं कह सकता कि वह कौन है। यह दिवाल पर गेंद फेंकने के समान है। गेंद दिवाल पर पहुँचेगा, पर वह उलटा उछल आवेगा। बुद्धि (तर्क) अनन्त में नहीं धँसती। यदि अनन्त जाना जा सकता, तो अद्वैत के स्थान में तुरन्त द्वैत स्थापित हो जाता, और ज्ञाता या ज्ञात कोई भी अनन्त न रह जाता। किन्तु लौकिक ज्ञान से हम विश्व-व्यापकता स्थापित देखते हैं।

अब, इस लौकिक ज्ञान के उत्कर्ष के सम्बन्ध में सुनिये। पहले मैं तुम से बच्चे के सम्बन्ध में थोड़ा कहूंगा। बच्चे में न विश्व का ज्ञान होता है, न उस में स्थानीय अर्थात् अपना ही ज्ञान होता है। अब यह छोटा नन्हा बच्चा हमारे पास है। वह क्या जानता है? जब तक वह अपने सम्बन्ध में नहीं जानता, तब तक क्या हम राह देखा करते हैं, और उस से बातचीत नहीं करते? नहीं। जिन वस्तुओं से वह घिरा होता है, उन का ज्ञान उसे जब तक नहीं होता, तब तक क्या हम रुके रहते हैं और उन की चर्चा बच्चे से नहीं करते? नहीं। जब बच्चा बहुत छोटा है, तभी उस का नामकरण हो जाता है, हम उसे मुन्नुआ कहेंगे। माता-पिता बच्चे को इसी नाम से पुकारते हैं। वे उस से बातचीत करते हैं और उस से विभिन्न वस्तुओं की चर्चा करते हैं। उस से कहते हैं, तू बड़ा सुहावना है, बड़ा सुन्दर है, बड़ा

प्यारा है। वे उस से माता और पिता के विषय में कहते हैं। जब बच्चा तनिक बड़ा होता है और अपने आप इधर-उधर खेलने लगता है,तब वह ऐसे शब्द करता है जो समझ में नहीं आते। किन्तु अम्मा और दादा की बार बार कान में भनक पड़ने के कारण छोटा बच्चा भी उन ध्वनियों(आवाज़ों) की नक़ल करता है और जब बच्चा 'दा' कहता है. तब माता पिता से कहती है कि बच्चा तुम्हें पुकारता है। पिता बच्चे से कहता है, "यहां आओ," क्या लड़का इस का अर्थ जानता है? नहीं। केवल पिता के फैले हुए हाथों और पुचकारने से बच्चे पर इस तथ्य का संस्कार पड़ता है कि यह सब उसके (पिता के) पास जाने के लिये है। इस तरह हम देखते हैं कि बच्चे में अपने सबन्ध बोध की उन्नति उन लोगों की संगति स होती है, कि जिन में वह

रहता सहता है। इसी तरह विश्व सम्बन्धी-बोध उन लोगों की संगति से उन्नति करता है कि जिनमें वह होती है, और जो अपना ईश्वरत्व अनुभव करते हैं। यदि तुम खिन्नता का अनुभव करना चाहते हो,तो तुम्हें उन लोगों की सोहबत की ज़रूरत है कि जो बहुत रंजीदा हैं। यदि प्रसन्नता का अनुभव करना है तो उनका संग करो कि जो जीवन और प्रफुल्लता से परिपूर्ण हैं। और इस प्रकार केवल संगति से यह ज्ञान प्रज्वलन होता है। चाहे प्रकृति की संगति हो, चाहे उज्ज्वल (शुद्ध) चित्त की,और चाहे उज्ज्वल चित्त के लेखों की, कोई बात नहीं है, किन्तु संगति उस में यह ज्ञान प्रज्वलित करती है। पिता माता पुकारते हैं मुनुआ, मुनुआ, और बच्चा मुनुआ हो जाता है। वह इसी तरह रज़ुआ भी हो सकता था। ऐसा है या नहीं? फिर तीन या चार बच्चे एक कमरे में सो रहे हों। मनुआ पुकारा जाता

है। अकेला मनुआ ही जवाब देता है, रजुआ नहीं देता। ज़ोर से पुकार होने पर भी रजुआ नहीं जागता। क्योंकि वह नहीं पुकारा गया था।

जिस मनुष्य ने आत्मा से अपनी अभिन्नता का अनुभव कर लिया है उससे कोई मनुष्य अज्ञान ही के द्वारा ऐसा पूछ सकता है कि तुम घास की एक पत्ती बना दो। प्रश्नकर्त्ता कह सकता है:—"अच्छा देखो, तुम जो अपने को परमेश्वर कहते हो, तुम क्या कर सकते हो? परमेश्वर ने सम्पूर्ण ब्रह्माड की रचना की और तुम घास की एक पत्ती तक नहीं बना सकते। फिर भी आप अपने को परमेश्वर कहते हो। मुझे दिखाइये कि आप क्या कर सकते हो?" क्या ईसा इसी तरह नहीं भड़काया गया था? उसने शैतान के तानों की परवाह नहीं की, जिस ने उससे पहाड़ से फांदने का आग्रह किया था। किन्तु ईसा ने उससे कहा, "तू मेरे पीछे हट।" सारी शक्ति उसकी थी, किन्तु अविश्वासी के लिये वह करामात क्यों कर दिखावे। अगणित करामातें भी संशय शील को विश्वासी नहीं बना सकतीं। वह आत्मानुभव तब तक नहीं कर सकता जब तक उसमें भी विश्व के ज्ञान का उदय नहीं होता। जब मैं कहता हूं, "मैं परमेश्वर हूं", तब मेरा क्या आशय है? यह क्षुद्र व्यक्तित्व? नहीं, यह नहीं। यह मन? नहीं, यह नहीं। बात इस प्रकार की है। मान लो कि एक मनुष्य शास्त्री (एम. ए) है, और इसकी उसने उपाधि प्राप्त की है, मान लो कि वह राजा है, और उसकी राजा की पदवी है, यह तो व्यक्तित्व के लिये एक बाहरी वस्तु होगी, मानो कोई चीज़ ऊपर से ढँकी हुई होगी। इसी तरह, मैं यदि कहूं कि

सांप काला है, तो यह (कालापन) साँप नहीं हुआ, यह तो साँप से बाहर की एक वस्तु है, साँप का एक गुण है। किन्तु जब मैं कहता हूं कि साँप रस्सी है, तब मेरा कथन उसे एक पूर्णतया भिन्न वस्तु बना देता है। मैं सम्राट हूं। सम्राट एक उपाधि है, एक पद है। किन्तु मैं कहता हूं कि मैं परमेश्वर हूं—इसका अभिप्राय वह तुच्छ अहं नहीं है जो तुम देखते हो, जैसे कि रस्सी साँप नहीं थी। वह एक भ्रान्ति थी। अपने अज्ञान-वश तुमने रस्सी को साँप समझा, किन्तु वह सत्य नहीं था, वह तो वास्तव में रस्सी थी। इसी तरह यह व्यक्तित्व एक भ्रान्ति है। मैं परमेश्वर हूं और केवल परमेश्वर, नित्य, सर्व हूं, कोई भी प्रतिद्वंद्वी (rival) नहीं है।

इसे तनिक और दूर तक समझाने के उद्देश्य से, ये दो लहरें हैं। पानी एक में जैसा है, उससे दूसरी में क्या कुछ भिन्न है ? नहीं, जल ठीक वही है। सम्पूर्ण सागर में जल ठीक वही है। यहां हम एक रूप पाते हैं और वहां दूसरा। क्या आत्मा इसमें कोई और है और उसमें कोई और ? नहीं। केवल एक ही सर्वरूप है, वही अद्वितीय है। ये देहें सब आत्मा की देहें हैं। वे सब मेरी हैं। कोई भेद नहीं है। विभिन्न भाषाओं में 'प्रकाश' को हम विभिन्न नामों से पुकारते हैं। अंग्रेज़ीमें उसे 'लाइट' (light) कहते हैं, जर्मनी में 'लिचट' (licht) इत्यादि। किन्तु शब्दभेद के होते हुए भी है वह प्रकाश ही। क्या ऐसा नहीं है ? प्रकाश ठीक वही है, यद्यपि हम उसे विभिन्न नामों से जानते हैं। नामों से आत्मा में कोई भेद नहीं पड़ता, वह अवश्य सर्व रूप है, (सर्वं खल्विदं ब्रह्म)।

यह देह एक अविच्छिन्न देह है। यदि हाथ स्वतंत्र रूप से रहने की ठाने और कहे कि मैं रोटी कमाने वाला हूं, मैं सारी कमाई विलसूंगा, तो यह कैसे निभे? भोजन मुख से खाया और उस पेट से पचाया जाने के स्थान पर और उसकी पोषण शक्ति के वितरण के बदले, भोजन पिचकारी द्वारा हाथ में पेवस्त करना होगा। है हंसी की बात कि नहीं? क्या रुपये हाथ में चिपट जाते हैं? एक पीली बरैया हाथ में काट खाती है और हाथ फूल जाता तथा दर्द करता है। किन्तु यदि हाथ काट दिया जाय तो निरन्तर पीड़ा और क्लेश रहता है, क्योंकि वह समग्र [देह] का है। इसी से जब उदर द्वारा भोजन पचाया जाता है, तब हाथ का भी उचित अंश में पोषण होता है। समग्र [शरीर] एक साथ काम करता है। इसी लिये जब हम समग्र [विश्व] से अपने को काट लेते हैं; तब हम क्लेश पाते हैं, और तब तक क्लेश पाते हैं जब तक हमें अपनी विश्वव्यापकता का अनुभव नहीं होता। इस अभिनय (खेल) में कोई चैन नहीं मिल सकता। जब विश्वव्यापी ज्ञान की समुन्नति होती है, तब हमें सूझता है कि सारे शरीर अन्योन्याश्रित हैं, वे मेरे हैं, उनमें कोई विलगना नहीं है।

एक बार एक स्वामी एक सुनार के पास जा कर बोला "अपनी सर्वोतम अंगूठी निकाल कर परमेश्वर की अंगुली में पहना दो।" तदपुरान्त उसने जूते वाले से जाकर कहा, "अपना सब से बढ़िया जोड़ा लाकर परमेश्वर के पैरों में पिन्हा दो।" फिर वह दर्ज़ी के पास गया और उससे कहा, "अपनी सब से अच्छी पोशाक परमेश्वर को पहना दो", जिससे उसका अभिप्राय अपनी देह से था। जब लोगों ने

यह सुना, तो उसे परमेश्वर-निन्दक पाखण्डी कहने लगे और बोले, "दूर करो उसे, उसे कारागार में डालना चाहिये।" दूर हटाये जाने से पहिले स्वामी ने सुनवाई की प्रार्थना की। उसने कहा कि जेल में डाला जाने से पहले मैं आप लोगों से कुछ कहना चाहता हूँ। उसने उन से कहा "यह संसार किसका है?" उन्होंने उत्तर दिया, "परमेश्वर का"। "तारागण और सूर्य किसके हैं?" "परमेश्वर के।" खेत और जो कुछ उन खेतों में है वे सब किसके हैं? "परमेश्वर के।" इसे तुम विश्वास करते हो? उन्हों ने उत्तर दिया, "अवश्य, यह तो सत्य है।" तब उसने कहा, यह शरीर किसका है? उन्हों ने कहा, परमेश्वर का। पैर किसके हैं? परमेश्वर के। अंगुलिया किसकी हैं? परमेश्वर की। सचमुच यह परमेश्वर का है। चूँकि उन्हीं की दलीलों से उसने उन्हें दिखा दिया कि उसने जो कुछ कहा था ठीक है, इस लिये निःसन्देह कोई दण्ड नहीं दिया जा सका। वे अज्ञानी थे और स्वामी के समान गहरी उनकी दृष्टि नहीं गई थी।

भारत में जब कोई पुरुष मरने लगता है, तब कहा जाता है कि वह शरीर छोड़ रहा है; यहां लोग कहते हैं वह प्रेत वा भूत को छोड़ रहा है। यहां जिस वाक्य का व्यवहार होता है उसकी अपेक्षा वहां का वाक्य ज्यादा दुरुस्त है, क्योंकि यहां वाला वाक्य सूचित करता है कि शरीर से अतिरिक्त कोई प्रेत अन्य है। वहां यह भी कहा जाता है, "उसके प्राण निकल गये।" एक बार तीन मनुष्य एक साथ बैठे हुए खूब पी रहे थे। वे बड़े नशे में हो गये। उनमें से एक ने कहा, "कुछ खाया पिया जाय।" इस पर उन्हों ने

अपने एक साथी को मांस तथा दूसरी चीजें लाने को भेजा ताकि वे मौज उड़ा सकें। जब वह गया हुआ था तब बाकी दो में से एक की विलक्षण हालत हो गई और उसने अपने साथी से कहा, "मेरा दम निकलने चहता है।" दूसरे ने कहा, 'नहीं नहीं, तुम्हारा दम न निकलने पावे," और बीमार मनुष्य की उसने नाक दबा ली, ताकि दम न निकल सके। उसने उसके कान बन्द कर दिये और मुँह भी दबा दिया। उसने समझा कि इस तरह से सांस शरीर में रख सकूँगा। किन्तु हम भली भाँति जानते हैं कि इस कृत्य से उसके हाथ क्या लगा होगा। उन्हों ने सत्य का अनुभव नहीं किया था, और इस कृत्य की निरर्थकता नहीं समझे थे।

कृष्ण एक दावत देने वाले थे। सब मंत्री आमंत्रित हुए थे, किन्तु अपनी प्रेयसी राधा को उन्हों ने निमंत्रण नहीं दिया था। प्रधान मंत्री ने कृष्ण से राधा को निमंत्रण भेजने का निवेदन किया। किन्तु उन्हों ने मंत्री की वात न मान कर कहा, "नहीं।" तथापि महामंत्री ने कोई परवाह नहीं की और कृष्ण की दावत की सूचना जाकर राधा को दे दी। राधा ने मंत्री से कहा "जब आप भोज (उत्सव) करते हैं, तब आप अपने मित्रों को आमंत्रित तो करते हैं, किन्तु खुद अपने को नेवता तो नहीं भेजते, कि भेजते हैं? मैं जानती हूँ कि कृष्ण जी दावत कर रहे हैं। हम दोनों एक हैं। मुझे नेवता कैसे?

एक दिन मजनू की माशूका ने कहा कि मेरी तबियत ठीक नहीं है, और कोई भी चीज़ फायदा नहीं करती। इस लिये वैद्य बुलाया गया। पुरानी रीति के अनुसार वह तुरन्त लैली की फस्त खोलने के लिये गया, अर्थात् उसने हाथ में

एक छोटा सा घाव कर दिया ताकि (खराब) खून निकल जाय। किन्तु लैली के वदन से खून नहीं निकला। परन्तु मजनू के वदन से खून की धार वह चली। इन प्रेमियों की एकता ऐसी थी। इस लिये ऐसा प्रसिद्ध हैः—

खून रगे-मजनूं से निकला, फस्त लैला की जो ली।
इश्क़ में तासीर है, पर जज्बे-कामिल चाहिये॥

THE WORLD.

I saw, I studied and learnt it,
This Primer well did Me describe,—
Its letters were hieroglyphic toys—
In different ways did Me inscribe,
This Alphabet, so curious one day,
I relegate to the waste-paper basket,
I burn this booklet leaf by leaf
To light my lovely smoking pipe;
I smoke and blow it through my mouth,
Then watch the curly smoke go out.

संसार।

मैं ने (इस संसार को) अवलोका, मैं ने मनन किया, और जाना,
इस प्रथम पुस्तक ने मेरा अच्छा वर्णन किया था,
इस के अक्षर नक्शी खिलौने थे,
विभिन्न ढंगों से इस ने मुझे खोद कर अंकित किया—

यह अति विचित्र वर्णमाला, एक दिन
मैं रद्दी काग़ज़ की टोकरी के हवाले करता हूँ।
मैं इस (संसार रूपी) पुस्तिका के पन्ने पन्ने
अपनी प्यारी चिलम सुलगाने के लिये जलाता हूं।
मैं अपने मुँह द्वारा इसे पीता और फूँक देता हूं।
तब लच्छेदार धूम्र को बाहर जाते देखता हूं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सम्मोहन और वेदान्त।

—coc—

१. इमरसेन का कहना है कि एक को चोर कहो और वह चोरी करने लग पड़ेगा। दूसरे शब्दोंमें यह कि किसी तरह की तजवीज़ (उपदेश) करो और कार्य में तुम्हें उस के अनुरूप नतीजा दिखाई देगा। यह कथन कुछ मामलों के लिये यथार्थ है, किन्तु सर्वव्यापी रूप से नहीं। कुछ मामलों में एक सूचना (तजवीज़) प्रत्यक्ष फल पैदा कर सकती है, किन्तु दूसरे मामलों में उस का बिलकुल विपरीत परिणाम हो सकता है। सूचना के सीधे लागूपन पर जो लोग अनुचित ज़ोर देते हैं वे केवल आधे सत्य से ही परिचित हैं। वेदान्त के अनुसार, सूचनाएँ अपना प्रभाव उसी तरह पैदा करती हैं जैसे बिजली करती है, अर्थात् अनुमान (induction) और प्रवाहन (conduction) के द्वारा। उन मामलोंमें परिणाम सीधा और सूचना के अनुरूप होता है कि जिन में हमारी सूचना सीधे अधिकरण (subject आधार) को छू सकती है, किन्तु जिन मामलों में हमारी सूचना सीधे रोगी (अधिकरण) तक नहीं पहुँच सकती, अर्थात् वह अवस्था जब कि रोगी मनुष्य की बुद्धि सूचनाकारी मनुष्य से द्वेष रखती है और बीच में बाधक बन कर सूचना को अधिकरण (subject) के कारण-शरीर से सीधा संस्पर्श नहीं होने देती, तब परिणाम आशय वा विचार किये हुए परिणाम से बिलकुल उलटा होता है। यह परिणाम अनुमान (induction) द्वारा सम्मोहन (hypnotism) है। प्रथमवर्ती

परिणाम प्रवाहन (Conduction) द्वारा सम्मोहन है।

कारण शरीर मनुष्य के सम्पूर्ण (मानसिक) संस्कारों और अप्रकट शक्तियों का अनाविष्कृत (sub conscious) भंडारघर है। मनुष्य के सब काम, चेष्टायें वा गतियें, वर्ताव और दशायें (अवस्थायें वा स्थितियें) कारण शरीर में छिपी हुई सामग्री की फैलावट मात्र हैं, और तदनुकूल परिणाम का होना अनिवार्य है। कारण शरीर मनुष्य का हृदय, ठीक मध्य (केन्द्र), बादशाह है, अथवा तुम उसे मनुष्य का अधिकरणनिष्ठ मन (subjective mind) कह सकते हो।
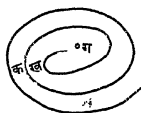
ग—कारण शरीर।
ख—सूक्ष्म शरीर या मानसता वा मानसिक अवस्था और बुद्धि या प्रज्ञा।
क—स्थूल शरीर।

स्थूल शरीर-कृत कोई भी काम तुरन्त मानसिक शक्ति और विचार में रूपान्तरित हो जाता है, और कुछ दिनों तक मानसिक लोक में - साथ के चक्र में जो 'ख' से दर्शाया गया है—रहने के बाद, कारण शरीर में, जो उक्त शक्ल में 'ग' से दर्शाया गया है-पहुँच जाता है, और वे सकल संकल्प वा विचार जो स्थूल जगतसे आये बिना, अनायास, मानसिक लोक 'ख' में प्रकट होते हैं, कारण शरीर की पुरानी जमा की हुई शक्ति मात्र हैं, जो शक्ति फिर कारण शरीर से नीचे के लोक (सूक्ष्मशरीर) 'ख' में प्रकट होती है। इस प्रकार क, ख, और ग या तीन शरीरों का परस्पर सम्बन्ध कुछ कुछ

वायु जल और जलमय वाष्प के सम्बन्ध के सदृश है। अथवा वरफ, पहाड़ी नदी और वदी फिर नीचे मैदान में नदी के सम्बन्ध के समान है। वास्तव में, सम्बन्ध अविच्छिन्न है।

मान लो कि तुम राह पर कोई वीमार मनुष्य पड़ा देखते हो। स्वभावतः तुम उसकी सहायता करने पहुँचते हो। जब तुम उसकी सेवा सुश्रुषामें लगे होते हो,तव तुम्हारा उस काम की ओर विलकुल ध्यान नहीं जाता, तुम पीड़ित मनुष्य की भरसक पीड़ा हरने के लिये सब कुछ करते रहते हो, तुम्हारी सब इंद्रियां और अंग पूर्णतया क्रियाशील होते हैं। जब तुम (पीड़ित) मनुष्य की सेवा कर चुकते हो और तुम्हारे शारीरिक अंग एवम् इंद्रियां विश्राम पाती हैं, तव तुम स्वभावतः देखोगे कि वह क्रियाशीलता और शक्ति जो पहले इंद्रियों के लोक में काम कर रही थी 'ख' लोक में पहुँच जाती है। दूसरे शब्दों में, तुम्हारा चित स्वभावतः तुम्हारे किये हुए कामों का चिन्तन करने लग जाता है, और तुम ज्ञानतः कार्य की भलाई या शूरता पर विचार करने लग पड़ते हो। कुछ कुछ देर के वाद यही शक्ति जो 'ख' लोक में काम कर रही थी, वहां न दिखाई पड़ेगी। वह कहां चली गई? क्या वह गायव हो गई है? ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि प्रकृति (कुद्रत) में कुछ भी खोता नहीं है। वेदान्त के अनुसार यह शक्ति अदृश्य हो गई है, और उप—सचेतन अवस्था (subconscious state) "क", कारण शरीर में पहुँच गई है, और इस प्रकार से कारणशरीर में जो शक्ति संचित होती है, वही 'ख' लोक में हमारे स्वप्नों में, हमारे आन्तरिक भावों में, आन्तरिक रुचियों, प्रवृत्तियों और शीलों

में प्रकट होगी। वेदान्त के अनुसार यह रुचियों की उपपत्ति (rationale) का वर्णन है।

परीक्षात्मक प्रमाण।

किसी मनुष्य की जागृत या सम्मोहित अवस्था में उसके कारण शरीर तक सीधी या फेरफार से पहुँच होने दो। वहां जिस प्रवृत्ति या रुचि की भावना पहुँचेगी, वह निःसन्देह उचित समय में स्वयं प्रकट होगी। जब कोई मनुष्य सम्मोहित होता है, तब की उत्तर-सम्मोहन सूचना (post hypnotic suggestion) जो जागने के बाद समोहित पुरुष से किसी विशेष समय पर कोई विशेष कार्य करवाना चाहती है, वह सूचना कार्य करने की प्रबल रूचि के रूप में ठीक समय पर निस्सन्देह सफल होगी। इस प्रकार, जैसा कि इस कार्य में,जो कुछ कारण शरीर में सूचना के प्रवेश से स्पष्ट प्रकट किया जा सकता है, मनुष्य कृत सभी कामों में कारण शरीर में प्रविष्ट पहले की सूचनाओं का अस्तित्व है, ऐसा वेदान्त बतलाता है। उन सूचनाओं का कारण चाहे इंद्रियों का सम्मोहन हो, या आन्तरिक संस्कारों का सम्मोहन हो। अथवा सम्मोहन का कोई भी रूप हो, जिस (सम्मोहन) संपूर्ण संसार वेदान्त के अनुसार बना हुआ है। कारण शरीर में स्वस्थता की सूचना भरने दो, स्थूल शरीर में परमेश्वरता की सूचना व्यापने दो, मनुष्य महात्मा हुए बिना नहीं रह सकता। कारण शरीर को गुलामी और कमज़ोरी की सूचनाओं से परिपूर्ण होने दो, स्थूल शरीर का दुर्बल और दास्य शील होना अनिवार्य है। अपने फल का मनुष्य आप ही विधाता है, क्योंकि उसी का कारण शरीर उसकी सम्पूर्ण परिस्थिति का ज़िम्मेदार है।

जिस प्रकार स्वप्नचार (Somnabulism सोते सोते चलने) या सम्मोहन की अवस्था में एक मनुष्य को उस स्थान पर झील दिखाई पड़ती है, जहां दूसरों के लिये कोई झील-वील नहीं है; वह मछियों के तालाब को देखता है, जहां दूसरों को कोई तालाब दिखाई नहीं देता; और वह उन चीज़ों को देखता है, जो दूसरों के लिये कभी मौजूद नहीं थी; ये सब दृश्य वा अलौकिक कार्य उस संमोहित मनुष्य के निजात्मा से ही उत्पन्न और रक्षित होते हैं। उसी प्रकार वेदान्त के अनुसार मनुष्य द्वारा देखा जाने वाला सम्पूर्ण संसार विशुद्ध रूप से केवल मनुष्य के निजात्मा से ही धारण किया जाता है। स्वप्न-चारिक और सांसारिक अवस्थाओं के दृश्यों वा अद्भुत व्यापारों में इतना ही अन्तर है कि पूर्व वर्ती अपेक्षाकृत अल्प जीवी तथा थोड़े काल की स्थिति वाले होते हैं। यह ठीक वैसी ही बात है जैसे कि कोई मनुष्य सम्मोहन की अवस्था में लाया जाकर अपने आप से भुला दिया जाय और उससे फिर निकाला न जाय। संसार के सब मनुष्य संसार के विचित्र जादू में मोहित हैं, और उन का यह मोह भंग होने में बहुत, बहुत समय लेगा, और तब तक बना रहेगा, जब तक कि कोई ब्रह्मज्ञानी जीवन-मुक्त आकर उन के मोह को दूर करके उन को असली ब्रह्मज्ञान (निज स्वरूप का ज्ञान) न दे ले, और वे स्वस्वरूप में जाग न उठें। वह जो सार पदार्थ है, और जो सम्पूर्ण दृश्य वा व्यापारका आधारभूत है, वही अवश्य सत्य है, और जो कुछ उस के ऊपर आरोपित है, वह अवश्य भ्रमात्मक व्यापार वा दृश्य है। कारण शरीर का आधार वा अधिष्ठान जो सब अवस्थाओं में, मुग्धावस्था में, जागृत अवस्था में, स्वप्न की अवस्था में, और गाढ़ निद्रा आदि की अवस्था

में-एकसां रहता है, वही सच्चा आत्मा या सत्य मात्र है। दूसरी हरेक वस्तु उस के ऊपर आरोपित (कल्पित) है, और भ्रमात्मक दृश्य वा व्यापार है। आत्मानुभव का अर्थ लाचारी और मोह की अवस्था से मुक्त होना तथा दिखाई पड़ने वाले दृश्य (व्यापार) को इस परम सत्य में लीन कर देना है। माता और पिता की कल्पना वा सूचना (suggestion) के द्वारा जिस का अनुमोदन इन्द्रियों की सूचना से हुआ, संसार को मोह-निद्रा प्राप्त हुई, और ठीक ढंग से प्रतिकूल सूचना वा कल्पना द्वारा उस का निवारण हो सकता है।

शुद्ध आत्मा ग़लत क्यों चला ?

यह क्यों और किस लिये तथा सम्पूर्ण चिन्ता सम्मोहन का एक अंश और परिमाण है; वे मूल कारण के बच्चे और प्रजा हैं। यह सवाल करने का अर्थ है कि कार्य के द्वारा कारण को काबू में लाने की आशा की जाय, बच्चे को पिता से आगे रखा जाय, और, गाड़ी को घोड़े से आगे रखा जाय। यह 'क्यों' की प्रवृति और सवाल करने की रुचि तथा यह सम्पूर्ण प्रश्न-प्रवाह व्याप्त सम्मोहनावस्था का एक भाग वा आविर्भाव (manifestation) है। मोह-नाश की अवस्था में ये कोई भी वर्तमान नहीं रहते। असली मूल अवस्था में इस में से कोई भी मौजूद नहीं होता, कोई भी प्रश्न सम्भव नहीं होता। यह सम्पूर्ण हेतु-माला कागज़ के टुकड़े पर खिंचा हुआ एक घूम-घुमौआ चक्र है जिस का कभी भी अन्त नहीं होता। यह कारण-शृंखला कभी रुकेगी नहीं, पेंच पर पेंच डालती हुई घूमती चली जायगी, किन्तु एकमेव सत्य कागज के टुकड़े के समान है जिस पर ये

सब चक्कर और लपेटे ठहरी हुई हैं। वह (सत्य) श्रृंखला से परे है। इस प्रकार 'क्यों और किस लिये इत्यादि' प्रश्न करने का चेष्टा करना, कागज़ को चक्र का यह अथवा वह सिरा बनाने के तुल्य है, मानों कागज़ चक्र के सब घुमाओ (चक्करों), लपेटों और फेरों में मौजूद नहीं था। इस लिये सम्पूर्ण संसार को राम की आज्ञा है कि अपने आप को तुम ज़ंजीर या घूम-घुमौआ चक्कर अथवा साँप की केंचलीमें उलझा हुआ न समझो। अपने आप को साँप की केंचली का नियन्ता, शासक और मालिक समझो, जानो, तथा अनुभव करो, और (तब) कारण-माला से तुम्हारा परे हो जाना निश्चित है। ठीक यही सत्य है, यही सत्य है। ॐ

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

मनुष्य, अपने भाग्य का आप ही स्वामी है।

ता० २४ जनवरी १९०३ को गोल्डेन गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान।

* ॐ *

महिलाओं और सज्जनों के रूप में अखिल विश्व के स्वामीः—

आज का विषय है "मनुष्य, अपने भाग्य का आप ही स्वामी है"। हम मनुष्य का विचार उसके वास्तविक स्वरूप के अनुसार करते चले आये हैं। वास्तविक मनुष्य, सत्य मनुष्य परमेश्वर है, परमात्मा है, जगदीश्वर के सिवाय और कुछ नहीं है। वास्तविक मनुष्य केवल एक ही शरीर के भाग्य का स्वामी नहीं है, वल्कि सम्पूर्ण विश्व का स्वामी है।

आज 'मनुष्य' शब्द हम उसी अर्थ में ग्रहण करेंगे जिसमें वेदान्तियों का सूक्ष्म शरीर ग्रहण किया जाता है, आप उसे इच्छा, संकल्प, वासना का पुतला कह सकते हैं। इस परि-मित और संकीर्ण अर्थ में भी मनुष्य अपने भाग्य का आप ही स्वामी है। इस प्रश्न के विभिन्न पहलू हैं। उन सब पर एक ही दिन में विचार नहीं किया जा सकता। आज हम केवल सूक्ष्म लोक की दृष्टि से प्रश्न पर विचार करेंगे।

शायद यह विश्वास करना सरलतर है कि पैदा हो जाने पर मनुष्य अपनी परिस्थिति को बहुत कुछ वदल सकता है। माना कि एक मनुष्य एक विशेष परिस्थिति में डाल दिया गया है, यह विश्वास करना सरलतर है कि वह अपनी परिस्थिति को थोड़ा या बहुत क़ाबू में रख सकता है, वह

परिस्थितियों का मालिक बन सकता है, वह उनसे ऊपर उठ सकता है, और अपने को शिक्षा भी दे सकता है। अत्यन्त गरीब लड़के से वह अपने को देश का सबसे बड़ा धनवान बना सकता है, जैसा कि कुछ लोगों ने किया है। मुफलिस भी अपने को लोकमान्य और लोक-विख्यात बनाने में सफल हुए हैं। बहुत ही ज़लील हालत में पैदा होने वाले मनुष्य अपने को अति समुन्नत करने में सफल हुए हैं। नेपोलियन बोनापार्ट का मामला ले लो, शेक्सपीयर की बात ले लो, लंदन के एक नगर-अधिपति (लार्डमेयर) ह्विटिंगटन की बात ले लो, चीन के एक प्रधान मंत्री की बात ले लो जो किसी समय गरीब किसान, निर्धन खेतिहर (किसान) था। यह सिद्ध करना सरल है कि इस संसार में जन्म होने पर हम अपने जीवनकाल में ही अपनी हालत बदल सकते हैं। यह साबित करना आसान है, किन्तु प्रश्न का कठिन भाग तब आता है जब वेदान्त कहता है कि अपने जन्म और अपने माता पिता के भी कर्त्ता तुम्ही हो। बच्चा मनुष्य का पिता है, किन्तु केवल इतना ही नहीं, बच्चा अपने पिता का भी पिता है। यह सिद्ध करना कठिन है। किन्तु वेदन्त कहता है कि चाहे जिस ओर से प्रश्न को देखो, अपने भाग्य के तुम आप ही विधाता हो। यदि तुम जन्मान्ध हो, तो भी अपने भाग्य के तुम्ही मालिक हो। तुम ही ने अपने आप को अन्धा बनाया है। यदि तुम दरिद्र मातापिता की सन्तति हो. तो भी तुम्ही अपने भाग्य के स्वामी हो, क्योंकि तुमने अपने आप को गरीब माता पिता से पैदा किया है। यदि तुम अत्यन्त अवांछनीय अवस्था में पैदा हुए हो, तो भी तुम्ही अपने भाग्य के मालिक हो, तुम्ही ने यह भी किया है। पैदा होने पर भी तुम्ही अपने भाग्यके मालिक

हो। आज हम प्रश्न के इसी पहलू पर विचार करेंगे। मनुष्य अपने जनक (मात-पिता) आप ही कैसे चुनता है ? दूसरे शब्दों में, आज हम किसी हद तक जीव के आवागमन की व्यवस्था पर विचार करेंगे । उसके केवल एक अंश को हम लेंगे।

कुछ लोगों का विश्वास है कि जब मनुष्य मर जाता है, तब वह बिलकुल मर जाता अर्थात् नष्ट हो जाता है। कुछ लोग मानते हैं कि मनुष्य के मर जाने पर एक भावना-सृष्टि (संकल्पज) परलोक के अस्तित्व का निरूपण हमें करना ज़रूरी है,ऐसे लोक का कि जिसका कोई निर्विवाद प्रमाण हम इस दुनिया में नहीं दे सकते, ताकि अपने अन्तर्वर्ती, सहज, स्वाभाविक अमरता के विचार का समर्थन हो, ताकि हमारी अन्तर्वर्ती अभिलाषा के कारणों का निर्देश वा स्पष्टीकरण हो कि हमारे कुटुम्बी न मरें और हम अपने मित्रों को मरते न देखें। कुछ लोगों का इस ढँग का विश्वास है, और इन लोगों के पक्ष में भी कुछ सत्य है । इन लोगों की ओर जो सत्य है उस पर इसी हाल (कमरे) में उस दिन शाम को विचार किया गया था। किन्तु यह सम्पूर्ण सत्य नहीं है । मृत्यु के बाद तुम्हारा नरक जाना या स्वर्ग में प्रवेश करना सम्पूर्ण सत्य नहीं है। हमें इस लोक में अर्थात् भौतिक अस्तित्व के लोक स्थूल जगत में मामले को समझाना होगा। आप के आध्यात्मिक लोक के नियमों को आप के स्थूल लोक क नियमों के उल्लंघन करने का अधिकार नहीं है। यहां एक मनुष्य भूमि के भीतर तुपा है। "मट्टी मट्टी में मिल जाती है", ऐसा उस की कब्र पर कहा जाता है। किन्तु तनिक समझ लो। देह अवश्य मट्टी को

लौट जाती है, किन्तु देह का नाश नहीं हुआ, केवल उसका रूपान्तर हो गया है। देह के स्थूल तत्व बदले हुए रूप में वर्तमान हैं, वे नष्ट नहीं हुए हैं। तुम्हारे मित्र का वही शरीर क़ब्र पर सुन्दर गुलाब के रूप में फिर प्रकट होगा, तथा किसी दिन फलों और वृक्षों के रूपमें उसका फिर आविर्भाव होगा। उसका नाश नहीं हुआ है।

अच्छा हमें सन्देह किस बात में होता है? क्या आत्मा, सत्य, वास्तविक परमेश्वर का नाश होगया है? नहीं, नहीं। उसका कदापि नाश नहीं हो सकता। असली व्यक्ति, सत्य मनुष्य का कदापि नाश नहीं हो सकता, वह कभी नष्ट नहीं किया जा सकता। तो फिर हम संदिग्ध (संदेहाकुल) किसके सम्बन्ध में हैं? यह है सूक्ष्म शरीर, जिसे दूसरे शब्दों में आप मानसिक वासनायें, मानसिक भावनायें, मनोविकार, मनोभिलाषायें, चित्त की लालसायें, अन्तःकरण की आकांक्षायें और संकल्प कह सकते हैं। इन्हीं का सूक्ष्म शरीर बना है इस सूक्ष्म शरीर का क्या हुआ? मनुष्य भूमि में गड़ा है, तो क्या ये चीज़ें भी तुपी हुई हैं? नहीं, नहीं। ये तोपी नहीं जा सकतीं। तो फिर उनका हुआ क्या? सारा प्रश्न इस सूक्ष्म शरीर का है कि जो तुम्हारी मानसिक क्रिया-शक्ति, आन्तरिक क्रियाशीलता या भीतरी विकारों, भावनाओं और कामनाओं का बना है। इस शक्ति, विकारों, भीतरी इच्छाओं आदि के फलका, इन के संयोग या समूह का क्या होता है? यह कहना कि यह आध्यात्मिक लोक को—यहाँ मेरा अभिप्राय उस लोक से है जिसे आप यांत्रिक नियमों से नहीं सिद्ध कर सकते—चला जाता है, तुम्हारे विचार से भले ही बिलकुल ठीक हो, किन्तु विज्ञान (Science) इसी स्थूल

लोक में प्रमाण चाहता है कि इस शक्ति का क्या हुआ? आप वह अटल, सार्वभौम नियम जानते हैं, जिसे विज्ञान ने सब सन्देहों से परे कर दिया है, कि इस संसार में नाश किसी भी वस्तु का नहीं होता। शक्ति के आग्रह का नियम (Law of the Persistence of Force), पदार्थ के अविनाशत्व का नियम (the Law of the Indestructibility of Matter), शक्ति के संरक्षण का नियम (the Law of the Conservation of Energy) आपको बताते हैं कि कोई भी वस्तु नष्ट नहीं हो सकती है। अच्छा, यदि शरीर का नाश नहीं हुआ, केवल उसकी दशा बदल गई, और यदि हम में स्थित परमेश्वरता का नाश नहीं होता बल्कि वह नित्य निर्विकार रहती है, तो फिर इन मनोभिलाषाओं, मानसिक क्रियाशक्ति, आन्तरिक जीवन का ही नाश क्यों हो जाना चाहिये? उनका नाश क्यों हो? शक्ति के संरक्षण का अनिवार्य नियम हमें बताता है कि उनका नाश कभी नहीं हो सकता। तुम्हें यह कहने का कोई हक़ नहीं कि उनका नाश हो गया। उन्हें अवश्य जीना होगा, वे अवश्य जीवती हैं। वे चाहे अपना स्थान बदल दें, वे अपनी दशा चाहे बदल दें, परन्तु उनका जीना ज़रूरी है, उनका नाश कदापि नहीं हो सकता। ठीक इसी तरह कि जब तुम एक मोमबत्ती ले कर जलाते हो, तब हम देखते हैं कि आध घंटे में वह सब समाप्त हो जाती है; मोम, बत्ती, सब कुछ चली जाती है। किन्तु रसायन विद्या सिद्ध करती है कि उसका नाश नहीं हुआ, वह लुप्त नहीं हुई है। झुकी-परीक्षा-नली (bent test tube) के द्वारा जिसमें तेज़ाब (Caustic Soda) और एक दूसरा रसायनी पदार्थ हो, यह प्रकट हो जाता है कि मोमबत्ती का जो सब अंश नष्ट हुआ प्रतीत होता था वह

मौजूद है, उस झुकी-परीक्षा-नली में रुका हुआ है। पानी से भरी हुई तशतरी (थाली) का सब पानी भाफ होकर उड़ जाने पर साधारण मनुष्य कहेगा, पानी का लोप हो गया, जल जाता रहा, किन्तु स्थूल पदार्थ-विज्ञान हमें बताता है कि जल जाता नहीं रहा है। प्रयोगों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह हवा में विद्यमान है, उसका नाश नहीं हो सकता।

इसी तरह जब मनुष्य मरता है, उसकी मानसिक शक्तियाँ उसकी इच्छाओं, मनोविकारों, भावनाओं की देखने में हानि होती है, और स्पष्ट में उनकी मृत्यु हुई प्रतीत होती है, किन्तु वेदान्त मानो अपनी आत्मा रूपी रसायन विद्या लेकर आता है और प्रयोगतः सिद्ध करके तुम्हें दिखा देता है कि उनका नाश नहीं हुआ है और न नाश होसकता है। यदि उसका नाश नहीं हुआ है, तो फिर क्या हुआ ? हमें इस प्रश्न को वैसे ही हल करना होगा जैसे हम गणितके प्रश्न को हल करते हैं। हम एक सवाल ले लेते हैं, और उसकी निर्दिष्ट वा स्वीकृत बातों (data) तथा ज्ञातव्य वस्तु (quisita) पर, और अनुमान (hypothesis) तथा आवश्यक परिणाम पर दृष्टि डालते हैं। हम दोनों पहलुओं पर विचार करते हैं। कभी कभी केवल अनुमान या स्वीकृत पक्ष पर ही विचार करने से हमें पूरी बात सिद्ध करने में सफलता प्राप्त हो जाती है, और कभी कभी हमें परिणाम या ज्ञातव्य बात को लेकर उस पर विचार करना पड़ता है, और बार बार विचार करना होता है, और ज्ञातव्यपक्ष को स्वीकृतपक्ष से संयुक्त करना पड़ता है, या परिणाम को अनुमान से संयुक्त करना पड़ता है। अच्छा, स्वीकृत पक्ष क्या है, और ज्ञातव्य बात क्या है ? जीवन और मृत्यु। ये हैं जानने की बात और जानी हुई

बात। जन्म का व्यापार स्वीकृत पक्ष के समान है, और मृत्युका व्यापार ज्ञातव्य वस्तु के समान है, अथवा व्यतिक्रम (vice versa) से। बात एक ही है। यहां दुनिया में इतने अधिक मनुष्यों का जन्म हो रहा है और वहां इतने अधिक की मौत हो रही है। ये लोग जो मरते प्रतीत होते हैं, यदि उनकी मानसिक शक्ति, या उनकी इच्छा इत्यादि भी उनके साथ मर जाती है, तो इस प्रकार का अनुमान करने से आप विज्ञान के स्थापित नियमों के विरुद्ध एक बात निरूपण करते हैं। यदि हमारी मानसिक शक्तियां चली जाती अर्थात् नष्ट हो जाती हैं, तो कुछ नहीं (शून्य) में कुछ वस्तु चली जायगी। किन्तु आप जानते हैं कि यह असम्भव है। कुछ वस्तु 'कुछनहीं' में कदापि नहीं पैठ सकती। इस भूल से बचने के लिये आप को अवश्य विश्वास करना होगा कि मृत्यु के बाद मानसिक इच्छायें, मानसिक शक्ति और मानसिक क्रिया-शीलता 'कुछ नहीं' (शून्यता) में नहीं समा जातीं। तुम्हें पहले यह मान लेना ज़रूर होगा, तुम्हें यह स्वीकार कर लेना होगा। तुम्हें यह मान लेना उचित है, और तब दूसरा प्रश्न होगा, उनका क्या होता है ?

मानसिक इच्छाओं आदि का क्या होता है, अब इस दूसरे प्रश्न का विचार हम जन्म के व्यापार पर विचारते हुए करेंगे। विभिन्न योग्यताओं, विभिन्न रुचियों, विभिन्न प्रवृत्तियों, विभिन्न कपालरेखाओं, विभिन्न मस्तिष्क-रचना के कितने ही लोग इस संसार में पैदा होते हैं। कुछ लोगों का दिमाग भारी होता है, कुछ का बहुत हलका होता है, कुछ का सिर गोल होता है, दूसरों के सिर समकोणाकार (oblong) होते हैं। यह क्या बात है ? एक ही जनकों के

बच्चे पूर्णतया प्रतिकूल प्रवृत्ति के होते हैं। कितने माता-पिता एक ही घरमें हरसहाय और रामसहाय को जन्म दे रहे हैं, नन्दू और नन्दू के भाइयों को एक ही घरमें पैदा कर रहे हैं। महाविद्यालय के विद्यार्थी, एक ही छात्रावास में रहते हैं और एक ही अध्यापक से पढ़ने पर भी विभिन्न वृत्तियों के होते हैं, बिलकुल विपरीत रुचियों के होते हैं। एक गणित को पसन्द करता है, दूसरे की रुचि इतिहास पर होती है। एक कवि होता है, और दूसरा कुन्दज़हन। लोगों की मनोवृत्तियों और स्वभावों में कोई अन्तर है या नहीं? अन्तर है। तुम यह अस्वीकार नहीं कर सकते। कुछ लोग पैदायशी परिपक्व होते हैं, वे अपने बचपन में ही तेज़ होते हैं। दूसरे अपने लड़कपन में भी बहुत सुस्त होते हैं। वेदान्त का सवाल है कि प्रवृत्तियों और रुचियों के प्रभेद का क्या कारण है? यदि आप यह कह कर इस समस्या को हल करते हैं कि यही परमेश्वर की मर्ज़ी है, यह परमेश्वर का कार्य है, तो यह कोई जवाब नहीं है। यह तो केवल प्रश्न का टालना है। प्रश्न का टालना तो अदार्शनिक वा अतात्विक है, यह तो अपनी मूर्खता की घोषणा करना है। विज्ञान के मान्य नियमों से यह समझाओ। यदि आप यह कहते हैं कि 'अपने बचपन से ही इन विभिन्न इच्छाओं को लेकर जो वे जन्म ग्रहण करते हैं' यह परमेश्वर की मर्ज़ी है, तो विज्ञान के प्रस्थापित नियमों का आप उल्लंघन करते हैं। इस प्रकार तो आप अमली तौर पर निरूपण करते हैं कि 'कुछ नहीं' से कुछ वस्तु बाहर आ रही है। और यह असम्भव है, आप जानते हैं। इस कठिनता से बचने के लिये, आप को वह मानना वा ग्रहण करना पड़ेगा कि स्वभावों और प्रवृतियों का यह प्रभेद बच्चा मानो परलोक

से अपने साथ लाता है। ये विभिन्न प्रकार की इच्छायें 'कुछ नहीं' से बच्चे नहीं लाते हैं, बल्कि कुछ वस्तु से उन का आना हो रहा है। 'कुछ नहीं' से वे अस्तित्व में नहीं आ रही हैं। उन का अस्तित्व पहले भी रहा है। दूसरे शब्दों में, ये सब वासनायें, जिनको लोग जन्म के समय अपने साथ लाते हैं, पहले के उपस्थित रूप से लाई जाती हैं। ये इच्छायें कुछ समय पहले मौजूद थीं। यहां पर हम जन्म सम्बन्धी ज्ञातव्य विषय (quisita of birth) और मृत्यु के स्वीकृत तथ्य (data of death) पर विचार कर रहे हैं। वेदान्त दोनों को मिला देता और कहता है, जब मनुष्य मरता है, मरने के समय की उस की अपूर्ण इच्छाओं का नाश नहीं हो सका। विभिन्न स्पष्ट इच्छाओं से युक्त यह एक अजनबी यहां पैदा हुआ था। उस की इच्छायें 'कुछ-नहीं से' नहीं आ सकती थीं। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जो इच्छायें मनुष्य के साथ क़ब्र में तोपी गई थीं वही घर में पैदा होने वाले नवीन मनुष्य के साथ फिर प्रकट होती हैं। यदि आप यह मान लो, तो आप उस भयंकर भूल से बच जाते हो जो आप ने यह कहकर की थी कि कुछ चीज़ 'कुछ-नहीं' में खोगई है, और 'कुछ नहीं' से कोई चीज़ निकल आई है। हिन्दुओं के इस कर्म के नियम को मान लेने से आप उस विकट कठिनाई से छूट जाते हो, और मृत्यु तथा जन्म का सम्पूर्ण दृश्य वा व्यापार बिलकुल स्वाभाविक हो जाता है, एवं प्रकृति के क़ानूनों तथा इस विश्व के साम्य वा मेल के मान्य नियमों के सर्वथा अनुकूल हो जाता है।

फिर तुम देखते हो कि कर्म का यह क़ानून तुम्हें तर्क के एक दूसरे नियम के द्वारा जिसे तत्ववेत्ता कार्पण्य का क़ानून

(law of parsimony) कहते हैं, स्वीकार करना होगा। जब कोई बात स्वाभाविक और साधारण नियमों से समझाई जा सकती है, तब हमें खींचातानी की, अस्वाभाविक और आनुमानिक व्याख्याओं से न काम लेना चाहिये। कर्म का क़ानून अत्यन्त स्वाभाविक, अत्यन्त स्पष्ट और अत्यन्त वैज्ञानिक व्याख्या करता है। इसे छोड़ कर फालतू या लौकिक व्याख्याओं को आप न ग्रहण करें।

यहां पर एक प्रश्न होता है। वैज्ञानिक कहते हैं, ओ नहीं, ओ नहीं, नवजात शिशुओं की विभिन्न प्रवृत्तियों की व्याख्या हम कर्म के क़ानून के द्वारा न करेंगे, हमें कर्म के क़ानून का सहारा नहीं लेना चाहिये, वंश–परम्परा के क़ानून (Law of Heredity) के द्वारा बड़ी आसानी से हम इन सब बातों को समझा सकते हैं। वंश-परमपरा का नियम उन सब बातों की व्याख्या कर देगा, किन्तु वेदान्त का कहना है कि कर्म का क़ानून वंश-परम्परा के क़ानून के विरुद्ध नहीं है। यह (कर्म का क़ानून) उस (वंशपरम्परा के नियम) को ढक लेता है, उसकी व्याख्या कर देता है, किन्तु साथ ही साथ कर्म का क़ानून वंशपरम्परा के क़ानून की व्याख्या करने के अतिरिक्त, मृत्यु के समय, मानसिक शक्ति की देखने मात्र हानि की भी व्याख्या कर देता है। वंश-परम्परा का क़ानून इस (मृत्यु के समय मानसिक शक्ति की ज़ाहिरा हानि) की व्याख्या नहीं करता। इस लिये केवल वंशपरम्परा के क़ानून की अपेक्षा कर्म का यह क़ानून समस्त वैज्ञानिकों और तत्ववेत्ताओं के ध्यान का अधिक दावेदार है। कर्म का क़ानून वंशपरम्परा के क़ानून को कैसे समझाता है? किसी मनुष्य के मरने पर उसकी सब इच्छायें देखने

में नष्ट हो जाती हैं। वेदान्त कहता है उन का नाश नहीं हुआ। जैसे जब मोमवत्ती जलती होती है, तब वत्ती और मोम की हानि हो जाती है, परन्तु जाहिरा जब हानि होती है तभी रसायनिक प्रीति (Chemical affinity) से (दूसरे रूप में) उस की प्राप्ति भी होती है; अर्थात् रसायनिक प्रीति के द्वारा कार्वन ओक्सीजन में मिल जाता है, हाइड्रोजिन ओक्सीजन में मिल जाता है। इस तरह ये इच्छायें, यह मानसिक शक्ति, या मनुष्य का सूक्ष्म शरीर, मृत्यु के बाद, आध्यात्मिक सम्बन्ध के एक क़ानून के द्वारा—अथवा हम उसे भौतिक सम्बन्ध भी कह सकते हैं—मिल जाते हैं। तुम्हारी सम्पूर्ण मानसिक शक्ति उस क्षेत्र में खिंच जाती है, जहां की अवस्था, परिस्थिति, उसकी वृद्धि के अनुकूल, फलने फूलने में सहायक, और विकास में बहुत उपकारिणी होती है। दूसरे शब्दों में, तुम्हारी इच्छाओं या मानसिक शक्ति का योग वा फल उस स्थान को खिंचा जाता है जहां तुम्हें अनुकूल भूमि मिलेगी, जहां सब अप्रयुक्त शक्तियां (unutilized energies) तथा अपूर्ण इच्छायें फलवान होंगी।

इस तरह हरेक व्यक्ति अपने माता पिता आप चुनता है। फिर हम देखते हैं कि जब एक मनुष्य ज़िन्दा होता है तब इच्छाओं से भरा होता है । उसकी अधिकांश इच्छायें उसके जीवनमें पूरी हो जाती हैं,किन्तु कुछ नहीं भी पूरी होतीं। इनका क्या होगा ? क्या उनकी बिलकुल उपेक्षा होगी और वे नष्ट हो जायंगी ? नहीं,नहीं। जब एक कली एक बाग में दिखाई देती है, तब उसके फूलने और खिलने की आशा होती है। कली से की गई आशा पूरी होती है, और ठीक उतरती है। हम देखते हैं कि चींटियों और क्षुद्र

प्राणियों की भी इच्छायें पूर्ण होती हैं। तो फिर मनुष्य की ही इच्छायें क्यों मारी जाँय? प्रकृति या ईश्वर द्वारा मनुष्य क्यों हंसा जाय? मनुष्य उपहास के लिये नहीं है। उसकी इच्छाओं का भी सफल होना ज़रूरी है। हमारी अधिकांश इच्छायें हमारे जीवन में फलती फूलती हैं। इस तरह हम देखते हैं कि इच्छायें ही हमारे कार्य बनती हैं, इच्छायें ही प्रेरक शक्ति हैं। किन्तु अनेक इच्छायें नहीं पूर्ण होतीं। उनकी क्या गति होगी? वेदान्त कहता है, "ओ मनुष्य! ईश्वर द्वारा हंसे जाने के लिये तुम नहीं हो। तुम्हारी सब अपूर्ण इच्छायें और अतृप्त शक्ति अवश्यमेव फलवान होगी, यदि इस लोक में नहीं तो दूसरे लोक में ज़रूर।"

यहां अब एक प्रश्न है। यदि पहले किसी योनि में हमारा अस्तित्त्व था, और यदि मृत्यु के बाद हमें फिर जन्म ग्रहण करना है, तो फिर पिछले जन्मों की हमें याद क्यों नहीं है? वेदान्त पूछता है, स्मृति क्या है? उदाहरण के लिये राम यहाँ तुमसे एक विदेशी भाषा में बोल रहा है। राम ने भारतवर्ष में कभी अंग्रेज़ी भाषा में व्याख्यान नहीं दिया। तुमसे अंग्रेज़ी में बोलते समय मातृभाषा का एक भी शब्द राम के चित्त में नहीं आता। किन्तु उस भारतीय भाषा की क्या पूर्ण हानि हो गई है? नहीं। वह वहां है। और यदि राम चाहे तो एक क्षण की सूचना से अरबी, फार्सी, या दूसरी भारतीय भाषायें उसे याद पड़ सकती हैं। तब, स्मृति क्या है? यह तुम्हारे मन की झील है। राम के मामले में सब भारतीय भाषायें, फ़ारसी, अरबी और संस्कृत इस झील की तह (bottom) पर अवस्थित हैं। एक क्षण की सूचना से हम झील को क्षुब्ध कर सकते

हैं, और इन सब चीज़ों को तल (surpace) पर ला सकते हैं, और यही किसी बात को याद करना है। तुम बहुतेरी बातें जानते हो, परन्तु सब की तुम्हें चेत नहीं होती। अपने मन की झील को हिला डुला कर इसी क्षण तुम उन से सचेत हो सकते हो, उन्हें तल पर लाने से वे तुम्हारे चित्त में आ जाती हैं।

इसी तरह वेदान्त कहता है, तुम्हारे सब जन्म और भूतपूर्व जीवन वहां तुम्हारी चेतना की आन्तरिक झील में, ज्ञान की आन्तरिक झील में हैं। वे वहां हैं। इस समय वे तह पर अवस्थित हैं। वे तल (सतह) पर नहीं हैं। यदि तुम अपने पिछले जन्मों की याद करना चाहते हो, तो कोई कठिन बात नहीं है। अपने ज्ञान की झील ही की तह को खलमला कर आप जो चीज़ चाहें तल पर ला सकते हैं। यदि आप चाहें तो अपने पिछले जन्मों को भी याद कर सकते हैं. किन्तु यह प्रयोग करने के योग्य नहीं है, क्योंकि एक दूसरे क़ानून अर्थात् उत्क्रान्ति के क़ानून के अनुसार,तुम्हें आगे बढ़ना है, तुम्हें अग्रसर होना है। पुराने मुर्दे तुपे रहने दो, भूत काल को अतीत की खबर लेने दो। तुम्हारा उस से कोई सम्बन्ध नहीं। तुम्हें तो आगे जाना है।

फिर ये सब चीज़ें जिन में तुम्हें इतनी दिलचस्पी है, जिन्हें तुम इतना अधिक पसन्द करते हो,जिन से तुम आकृष्ट होते हो, तुम दुनिया में देखते हो। वेदान्त कहता है, कर्म के क़ानूनों के अनुसार तुम इन्हें पसन्द करते हो, तुम्हारी इनमें दिलचस्पी है, तुम्हारा इन पर स्नेह है। तुम इन्हें पहचानते हो, केवल इसी कारण से कि किसी समय तुम ये सब

चीज़ें रह चुके हो, तुम चट्टानें हो चुके हो, तुम चट्टानों में सो चुके हो, तुम नदियों के साथ बहे हो, तुम पौधों के साथ उगे हो, तुम पशुओं के साथ दौड़े हो, और तुम उन सब को देखते और पहचानते हो। अब हम इसे दूसरी दलील से साबित कर सकते हैं।

यह अफलातूं की दलील को काम में लाना है। स्मृति क्या है? स्मृति से प्रतीत होता है कि जिस वस्तु को हम अब याद कर रहे हैं उसे हम पहले से जानते थे। दृष्टान्त के लिये कल्पना करो कि कुछ लोग एक साथ ये व्याख्यान सुनने आते हैं, कभी न बिछुड़ने वाला जोड़ा। इस भवन (हाल) में दिये हुए सात व्याख्यानों में वे आये, किन्तु आठवें व्याख्यान में केवल एक ही अकेला पधारता है, दूसरा नहीं। बिछुड़े हुए अकेले मनुष्य से मित्रगण यह प्रश्न करेंगे, "तुम्हारा मित्र या प्रेमपात्र कहां है? वह कहां है?" यह प्रश्न क्यों किया जायगा? इस प्रश्न का कारण स्मृति का क़ानून है, जो संग वा संयोग का क़ानून भी है। हम दोनों को सदा साथ देखते हैं, दोनों हमारे सुपरिचित हो जाते हैं, दोनों हमारे चित्त में मानों एक हो जाते हैं, दोनों संयुक्त थे, और बाद को हम उन में से एक देखते हैं, और यह एक हमें तुरन्त दूसरे को याद कराता है। इस तरह पर दिमाग में संग वा संयोग क़याम हुआ था, और इस तरह पर याद आई। यही याद उस वस्तु की भूतपूर्व जानकारी की सूचना देती है जिसे हम स्मरण करते हैं।

अब यह तुम्हारा तर्क है। सब मनुष्य मरणशील हैं। शिवलाल मनुष्य है, अतएव वह मरणशील है। तुम्हारी सब दलीलें, तुम्हारी सब युक्तियां, तुम्हारा सब तर्क-शास्त्र इस

आधार (premise) पर अवलम्बित है—सब मनुष्य मरणशील हैं, शिवलाल एक मनुष्य है। केवल ये दो बातें कहो, परिणाम को रोक रक्खो। स्मृति की भांति तुम्हारे चित्त में तुरन्त परिणाम–शिवलाल मरणशील है–आजाता है। यह नतीजा कैसे निकला? अफलातातूं की व्याख्या के अनुसार स्मृति के क़ानून की क्या यह करतूत नहीं है? है। तीन कथन "सब मनुष्य मरणशील हैं," "शिवलाल एक मनुष्य है," और "शिवलाल एक मरणशील है"–मौजूद हैं। इनमें से दो तुम्हारे सामने रक्खे गये थे, "सब मनुष्य मरणशील हैं," "शिवलाल एक मनुष्य है"। ये दो तुम्हारे सामने रक्खे गये थे, और तुरन्त, जैसा कि दार्शनिक कहते हैं, विचार के नियमों के अनुसार, तीसरा कथन तुम्हारे चित्त में आ जाता है। हरेक के चित्त में वह आ जायगा। ऐसा क्यों होता है। ठीक वैसे ही यह भी होता है, जैसे कि जब हम एक मित्र को देखते हैं तो हमें उस दूसरे मित्र की याद आ जाती है जो सदा इस मित्र के साथ रहता था। अच्छा, यह याद क्योंकर आई, विचार का यह नियम हरेक और सब के दिमाग में स्वाभाविक क्यों है? विचार का यह नियम जिस के द्वारा इस प्रकार की याद आई हरेक और सब के चित्त में क्योंकर मौजूद है? एक प्रकार की स्मृति से। याद से पूर्वज्ञान सूचित होता है। हरेक बच्चा जिस का दिमाग है तर्क करने की योग्यता रखता है, हम हरेक बच्चे से बहस कर सकते हैं। जब वह कुछ सोचना शुरू करता है, तब हम उस के सामने यह तर्क पेश करें तो वह इसे मंजूर कर लेगा।

यहां पर हम रेखागणित का एक साध्य (Proposition)

सिद्ध कर रहे हैं। हम तुरन्त नतीजे पर पहुँच जाते हैं। यह नतीजा याद द्वारा प्राप्त हुआ। हरेक और सब के दिमाग में स्वाभाविक होने के कारण यह याद इस बात का ठीक २ प्रमाण है कि जो चीज़ें स्मृति द्वारा तुम्हारे दिमाग में फिर संजीवित होती हैं, उन से तुम पहले ही से परिचित हो। स्मृति से जो वस्तुयें तुम्हारे मस्तिष्क में फिर संजीवित होती हैं उनसे परिचित और अवगत होनेके लिये यह ज़रुरी है कि किसी न किसी समय तुम ने उन्हें सीखा या प्राप्त किया होगा। तुम्हें अब यकीन है कि तुम ने उन्हें इस जीवन में सीखा या प्राप्त नहीं किया। यह ज्ञान तुम्हें कहां से मिला? वेदान्त कहता है, किसी भूतपूर्व जन्म में।

अब एक दूसरा सवाल है। अच्छा, यदि हम अपने भाग्य के विधाता हैं, तो हम में से कोई भी गरीब नहीं होना चाहता। फिर हम गरीब क्यों पैदा होते हैं? हम सब चाहते हैं कि धनी पैदा हों, हम में से कोई भी गरीब नहीं होना चाहता, फिर भी हम में से बहुतेरे गरीब पैदा होते हैं। यह क्या बात है? वेदान्त जवाब देता है, तुम्हें इन मामलों पर ठीक ठीक रीति से दृष्टि डालनी चाहिये, उन्हें पूरी तरह पर समझना चाहिये। आधी सच्चाइयों पर भरोसा न करो। सब पहलुओं से तथ्यों को देखो। यह सत्य नहीं है कि हरेक व्यक्ति लंदन का नगरपति होने का इच्छुक है। यह एक मनुष्य है जो पाँच रुपये सप्ताह पाता है, उस की अभिलाषा है कि सात रुपये सप्ताह की जगह मिल जाय। लंदन का नगर-पति होने का विचार उस के चित्त में कभी नहीं आता। नहीं, तुम देखते हो, यह सत्य नहीं है।

अब दूसरी ओर (दृष्टि-स्थल) से मामले को देखिये।

लोग अपनी अभिलाषाओं में असंगत और अनुचित हैं। वे अपनी अभिलाषाओं को परिस्थिति के योग्य नहीं बनाते। वे अभिलाषाओं के गुलाम हो जाते हैं। वे अपनी इच्छाओं के स्वामी नहीं हैं, और इस प्रकार वे प्रतिकूल होते हुए भी, अपनी ही इच्छाओं से वे कठिनताओं और तंगियों में पहुँच जाते हैं, वे चिन्ता और दिक्कत में पड़ जाते हैं।

अब हरेक और सब के लिये वार्तालाप का रोचक हिस्सा आता है। मान लो कि यह एक मनुष्य है जो अपनी पाशविक वृत्तियों को चरितार्थ करना चाहता है। वह ज्ञान से कोई मतलब नहीं रखना चाहता। वह आध्यात्मिकता, धर्म, सदाचार, नाम या कीर्ति के झंझट में किसी तरह नहीं फंसना चाहता। वह इन बातों से कोई मतलब नहीं रखना चाहता। उसे केवल अपनी पाशविक इच्छाओं, अपनी इन्द्रियों की वासनाओं को तृप्त करने से प्रयोजन है। यह मनुष्य मरता है। (दृष्टान्त के लिये यह एक कल्पित मामला है)। अब यह किस प्रकार के माता-पिता अपने लिये बनावेगा ? उस की इच्छा नहीं चाहती कि विद्वान माता-पिता उसे जन्म दें। जिस प्रकार की शक्ति उस में है उसे अपने अनुकूल भूमि के लिये धनवान माता-पिता की ज़रूरत नहीं है। इस शक्ति को शिक्षित या सभ्य माता-पिता की आवश्यकता नहीं है। नहीं, वेदान्त कहता है कि यदि यह मनुष्य निरानिर पाशविक वृतियों का बना हुआ है, तो सुअरों या कुत्तों के रूप में उसे अत्यन्त उपयुक्त और उचित शरीर प्राप्त होगा, क्योंकि उस योनि में उसे पिता-माता से वह शरीर प्राप्त होगा जो खाने से नहीं अघाता, जिसे पाशविक वृत्तियों के अनुशीलन से तृप्ति नहीं होती, जो

शरीर इस के लिये उपयुक्त है कि वह अपने आप को बेहूदा बनावे। वह उस प्रकार का शरीर पावेगा। उस की इच्छाओं की पूर्ति के लिये उस का सुअर या कुत्ता के रूप में पैदा होना ज़रूरी है। इस तरह वह अपने भाग्य का आप ही स्वामी है, तब भी जब कि वह कुत्ता या सुअर है।

इस दुनिया के लोग जब किसी चीज़ की इच्छा करते हैं, तब वे नहीं देखते परिणाम क्या होगा, वे नहीं देखते कि वे कहां पहुँचेंगे। और बाद को जब वे अपनी इच्छाओं का फल पाते हैं, तब वे रोना और चीखना और अपने भाग्य को भीखना शुरू कर देते हैं, अपने ग्रहों को रोते हैं, वे रोना और अपने ओठ चबाना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार जब तुम इच्छा करते होते हो, तभी तुम समझ लेते हो कि परिणाम क्या होगा। तुम स्वयं ही इस मुसीबत को लाते हो, और दूसरा कोई नहीं।

पूर्वीय भारत के एक कवि की कथा राम तुमको सुनावेगा। वह मुसलमान कवि था। बड़ा भला और चतुर था। वह एक देशी राजा के दरबार में रहता था। राजा उस से बड़ा स्नेह करता था। एक रात को देशी राजा ने देर तक उसे अपने साथ रक्खा। कवि ने तरह तरह की कवितायें, सरस कथायें और अत्यन्त रोचक कहानियां सुना कर उस का मनोरंजन किया। चतुर कवि ने यहां तक राजा को प्रसन्न किया कि वह नींद को भूल गया, और बड़ी रात बीते सोने गया। रानी ने पूछा कि सयनघर सोने को आने में इतनी देर होने का क्या कारण है। राजा ने उत्तर दिया, "ओह, आज एक विलक्षण पुरुष आ गया था, वह बड़ा ही मज़ेदार, रसिक और रोचक था।" तब रानी ने बस

का अधिक हाल पूछा। रानी के कौतूहल के कारण राजा को कवि की योग्यता और गुणों का इस कदर विस्तार पूर्वक वर्णन करना पड़ा कि दोनों बहुत देर तक जागते रहे और बिलकुल तड़का होते होते सोये। रानी का कौतूहल बहुत ही बढ़ गया। उस ने राजा से कहा कि उस रसिक कवि को किसी दिन मेरे महल में भी लाओ। दूसरे दिन यह रसिक कवि रानी के सामने लाया गया। आप जानते हैं कि भारत वर्ष की रीतियां पश्चिमी रीतियों से बिलकुल भिन्न हैं। भारत में नारियां पृथक कमरों में रहती हैं और मर्दों से, पुरुषों से, बहुत नहीं मिलती जुलतीं। वे अलग रहती हैं, विशेषतः मुसलमान रमणियां, हिन्दू नारियां नहीं, बहुत बड़ा घूंघट काढ़ती हैं, और अपने पति या अत्यन्त शुद्ध अथवा सच्चरित्र और शरीफ के सिवाय किसी और के सामने मुँह नहीं खोलतीं। तथास्तु, बादशाह इस शायर को (हम लोगों की जवान में) रनिवास में, ज़नाने महल में लाया। वहां उस ने अपनी कविताये पढ़ीं और कहानियां सुनाईं। महिलाओं का दिल बहुत ही खुश हुआ। तब कवि ने बतलाया कि मैं अन्धा हूँ, नेत्रों के एक रोग से पीड़ित हूँ। किन्तु वास्तव में वह अन्धा नहीं था। इस कवि का दुष्ट अभिप्राय यह था कि वह रनिवास में रहने पावे, कोई उस पर सन्देह न करे, और नारियां उसे अन्धा समझ कर बिना किसी संकोच के उस के सामने निलकें और बातचीत करें, इस कमरे से उस कमरे में जायं और उस के सामने अपने चेहरों पर लम्बी नकावें न डालें। अब उसे अन्धा समझ कर राजा ने उसे नारियों के भवन में रहने दिया किन्तु आप जानते हैं कि सत्य छिपाया नहीं जा सकता।

"Truth crushed to earth shall rise again.

The eternal years of God are hers."

दलमल कर ज़मीन में मिला दिया जाने पर भी सत्य फिर उठेगा, परमेश्वर के नित्य वर्ष उस के हैं।"

सत्य छिपाया नहीं जा सकता, वह एक दिन अवश्य प्रकटेगा। एक दिन इस कवि ने एक लौंडी से कोई चीज़ लाने को कही। आप जानते हैं कि भारत में जो लोग तनिक धनी होजाते हैं वे बड़े आलसी हो जाते हैं। आलस्य धनशालिता का लक्षण समझा जाता है। तुम बड़े ही कुलीन हो यदि तुम खुद कुछ नहीं कर सकते। यदि एक आदमी की सहायता से तुम गाड़ी में बैठ पाते हो, तो तुम बड़े ही शरीफ़ आदमी हो। यदि कपड़े पहनने में तुम्हें किसी आदमी से सहायता लेनी पड़ती है, तो तुम बड़े ही कुलीन हो। यदि चलने फिरने में भी तुम्हें एक आदमी का सहारा लेना पड़ता है तो तुम बड़े ही कुलीन हो। इस प्रकार से परावलम्बन प्रतिष्ठा का चिन्ह है। स्वाधीन और स्वावलम्ब को पराधीनता और दासत्व समझा जाता है। जब इस कवि को राजा के भवन में एक अच्छी जगह मिल गई, तो अपनी जगह से उठ कर दूसरे किसी मनमाने स्थान पर कुर्सी ले जाकर रखना वह अपनी शान के खिलाफ समझने लगा। इस लिये एक दासी को उसने ऐसा करने की आज्ञा दी। किन्तु उसने कटुता से जवाब दिया कि मुझे छुट्टी नहीं है, इसके बाद दूसरी दासी वहां आई। उसने उसे बढ़कर अपने पास आने का संकेत किया और कुर्सी हटा देने को कहा। किन्तु उसने कहा कि कमरे में कोई कुर्सी नहीं है। उसने कहा, "पानी का वह गिलास मेरे पास ले आओ।" उसने कहा, "इस कमरे में एक भी नहीं है। मैं दूसरे कमरे से

तुम्हारे लिये लाती हूँ।" उसने कहा, "उसे लाओ, एक तो कमरे में है, तुझे दिखाई नहीं पड़ता, वह है।" काम कराने की धुन में वह अपने को भूल गया। यही हुआ करता है। इस तरह पर सत्य झूठों से दिल्लगी करता है। तुम जानते हो कि बी बी मैक्बैथ ने वह काम किया, परन्तु वह उसे छिपा न सकीं। सत्य ने उसे विक्षिप्त कर दिया और अपने आपही उसने डाक्टर से क़बूल दिया। यही हुआ करता है। यह क़ुदरत का क़ानून है। जब इस कवि ने कहा, "वहां वह है, तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता?" तब दासी काम कर देने के बदले तुरन्त दौड़ कर सीधी रानी साहिबा के पास पहुँची और भेद खोल दिया, तथा बोली, "देखिये! यह मनुष्य अन्धा नहीं है, यह दुष्ट पुरुष है, इसे घर से निकाल बाहर करना चाहिये।" वह घर से निकाल दिया गया, किन्तु लगभग तीन दिन के बाद वह सचमुच अन्धा हो गया। यह क्या बात है? बात क्या है, कर्म का क़ानून आप को बताता है कि यह मनुष्य अपनी ही मर्ज़ी से अन्धा हो गया है। अपने भाग्य का वह आप ही मालिक है। उस के अपने आपही ने उसे अन्धा किया। किसी दूसरे ने उसे नेत्रहीन नहीं किया, उसी की इच्छाओं ने उसे अन्धा किया। बाद को अन्धापन आने पर उसने रोना और विलपना, दांत पीसना और छाती पीटना शुरू किया।

एक आदमी एक भारी बोझ अपने कंधे पर लिये जाता था। वह बूढ़ा था, कमज़ोर था, उसे ज्वर था, और उष्ण देश में, भारत में रहता था। वह एक पेड़ की छाया में बैठ गया और कंधों से बोझ उतार कर कुछ देर तक विश्राम लिया और चिल्लाया, "ऐ मौत! आ जा, ऐ मौत! मेरा

संकट हर, मुझे चैन दे।" कहानी कहती है कि मृत्यु देव उसी ठौर उसके सामने प्रकट हो गये। जब उसने काल की ओर देखा, तब वह चकित होगया, और कांपने लगा। यह भयानक मूर्ति, यह कोई दानववत् वस्तु क्या है? उसने कालदेव से पूछा,"तुम कौन हो?" कालदेवने कहा,"मैं वह हूँ जिसको तुमने याद किया था, तुमने अभी मुझे बुलाया है, और मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने आया हूँ।" तब तो बूढ़ा काँपने लगा और बोला, "मैंने तुम्हें इस लिये नहीं बुलाया था कि मुझे मार डालो, मैंने तुम्हें केवल इसी लिये बुलाया था कि मेरा बोझा उठवा दो और मेरे कंधों पर धरवा दो।"

लोग यही करते हैं। तुम्हारी सब कठिनाइयां, तुम्हारी सब मुसीबतें, और जिन्हें रंज कहा जाता है उन सब को लाने वाला तुम्हारा अपना ही आप है। तुम अपने भाग्य के आप ही विधाता हो। किन्तु जब (इच्छित) वस्तु आती है, तब तुम रोना और खीखना शुरू करते हो। तुम मृत्यु का आवाहन करते हो, और जब मृत्यु आती है तब तुम रोने लगते हो। किन्तु ऐसा नहीं हो सकता। जब तुम नीलाम में सब से ऊँची बोली एक बार बोल देते हो; तब तुम्हें चीज़ लेनी ही पड़ती है। जब तुम घोड़े को दौड़ाते हो, तब गाड़ी घोड़े के पीछे दौड़ती ही है। इस लिये जब एक बार तुम इच्छा करते हो, तो तुम्हें परिणाम भोगना ही पड़ेगा। इसका क्या कारण है कि लोग सामान्यतः बुढ़ापे में मरते हैं और जवानी में बहुत कम लोग मरते हैं? वेदान्त कहता है कि जब लोग बूढ़े हो जाते हैं, तब उनके शरीर रोगी हो जाते हैं। बीमारी उन्हें सताती है और तब वे मौत की इच्छा करने लगते हैं। वे संकट से

छूटने की इच्छा करने लगते हैं, और संकट से उनका छुटकारा होता है। इस तरह पर आप की मृत्यु को लानेवाला आप का अपना ही आप (मन वा आत्मा) है। वेदान्त के अनुसार प्रत्येक मनुष्य आत्महन्ता है । मृत्यु उसी क्षण आती है, जब तुम उस के आने की इच्छा करते हो। लोग चढ़ती जवानीमें क्यों मर जाते हैं ? इस समय शायद राम पर आप विश्वास न करेंगे, किन्तु यदि आप ठीक ठीक अवलोकन करें तो राम, इस समय जो कथन कर रहा है उस से आप को सहमत होना पड़ेगा। राम ने बहुतेरे लोगों को चढ़ती जवानी में मरते देखा है। राम ने उन के गुप्त जीवन में प्रवेश किया, सारे मामले की जाँच की, और मालूम हुआ कि ये युवक दिलोजान से मृत्यु के अभिलाषी थे, अपनी परिस्थितियों से परेशान थे, और आसपास को बदलना चाहते थे। सदा यही बात होती है । अब ठोस वा मोटे उदाहरण देने के लिये समय नहीं है, परन्तु यह एक तथ्य है।

भारत वर्ष के एक साम्प्रदायिक महाविद्यालय में एक होनहार युवक आध्यापकी का काम करता था। एक सार्वजनिक सभा में उस ने कहा कि मैं अपना जीवन इस निमित्त अर्पण करूंगा। उस ने अपने आप को उस काम के अर्पण कर दिया । कुछ समय तक बड़ी सरगर्मी से वह वहां काम करता रहा और फिर उस की राय बदली, उस के विचार फैले,उस का चित्त विस्तृत हुआ, उस के विचार बढ़े, और फिर उन सम्प्रदायावलम्बियों के साथ मिल कर काम करना उस के लिये कठिन हो गया, उन सम्प्रदायवादियों की हार्दिक सहानुभूति उसके साथ न रह सकी। फिर भी उसे उन

के साथ किसी तरह मिल कर काम करना पड़ता था, क्योंकि वह वचन दे चुका था, क्योंकि वह उन के पक्ष में अपने को बांध चुका था। इस लिये इस युवा पुरुष के लिये छुटकारे का कोई उपाय नहीं था। उस का मन यदि एक स्थान में था तो तन किसी दूसरे स्थान पर, मन और तन मिले हुए नहीं थे। यह हालत नहीं टिक सकी। मनुष्य की मृत्यु हो गई। मृत्यु के सिवाय किसी दूसरे उपाय से वह अपनी अवस्था को नहीं बदल सका। मृत्यु से हालत बदल गई। इस तरह पर मौत भी हौवा नहीं है जैसी कि वह जान पड़ती है।

तुम अपनी परिस्थितियों के स्वामी हो, आप ही अपने भाग्य के ईश हो। लोग दुःखी कैसे बनते हैं? मुसीबतें क्यों कर आती हैं? इच्छाओं के संग्राम (conflict) से। तुम्हें एक प्रकार की इच्छा होती है जो तुम से एक प्रकार का काम करवाती है, और फिर तुम्हें दूसरी इच्छायें होती हैं, जो तुम से दूसरे प्रकार के काम करवाती हैं। दोनों इच्छायें मौजूद हैं। एक इच्छा तुम्हें लेखक, वक्ता, अध्यापक, व्याख्यानदाता, या प्रचार की हैसियत से एक पद पर उठा ले जाना चाहती है, और दूसरी प्रकार की इच्छा उत्पन्न होती है और वह चाहती है कि तुम इन्द्रियों के दास बनो। ये परस्पर विरोधी इच्छायें हैं, और साथ २ नहीं टिक सकतीं। (ऐसी हालत में) क्या होता है? दोनों की पूर्ति आवश्यक है। जब कि एक की पूर्ति होती है तब दूसरी को हानि पहुँचती है और तुम्हें व्यथा होती है। जब कि दूसरी की पूर्ति होती है तो पहिली को हानि पहुँचती है और तुम्हें दुःख होता है। इस प्रकार से लोग अपने को क्लेश में डालते हैं। तुम्हारी पीड़ा भी यह प्रकट करती है कि तुम अपने

भाग्य के आप ही स्वामी हो। बड़ी सुन्दर कहानी से राम इस का दृष्टान्त देगा।

एक भारतीय के दो स्त्रियां थीं। आप जानते हैं कि हिन्दू बहुविवाह में कदापि नहीं विश्वास करते, किन्तु मुसलमान करते हैं। वह मुसलमान था, जिसके दो स्त्रियां थीं। उनमें से एक कोठे पर रहती थी और एक नीचे। एक दिन एक चोर घर में घुसा। उसने सब माल चुराना चाहा, किन्तु घरके आदमी जाग रहे थे, और चोर को कोई चीज़ चोराने का अवसर नहीं मिला। सवेरा होने के समय घर के लोगों ने चोर को देखा, और उसे पकड़ कर मजिस्ट्रेट के सामने ले गये। कुछ चोरी नहीं गया था, फिर भी चोर ने घर में सेन्ध तो लगा ही दी थी। यह एक अपराध (जुर्म) था। मजिस्ट्रट ने चोर से कुछ सवाल किये जिसने तुरन्त स्वीकार किया कि मैंने चोरी करने की नियत से घर में सेन्ध लगाई थी। मजिस्ट्रेट उसे कुछ दंड देने ही वाला था। उस मनुष्य ने कहा, "जनाव, ! आप जो चाहे कर सकते हैं, आप मुझे कारागार में भेज सकते हैं, आप मुझे कुत्तों के सामने फेंक सकते हैं, आप मेरे शरीर को जला सकते हैं, किन्तु एक दंड मुझे न दीजिये"। मजिस्ट्रेट. ने चकित होकर पूछा, 'वह कौन सा'? मनुष्य ने कहा, 'मुझे दो स्त्रियों का पति कभी न बनाइये। यह दंड मुझे कभी न दीज़ियेगा।" यह क्यों? तब चोर बताने लगा कि वह कैसे पकड़ा गया, कोई वस्तु चुराने का अवसर उसे क्योंकर नहीं मिला। उसने कहा कि सारी रात मकान के मालिक को ज़ीने पर खड़ा रहना पड़ा, क्योंकि एक छोड़ उसे ऊपर घसीट रही थी और दूसरी नीचे। उसके सिर

के वाल नुच गये और पैरों के मौज़े फट गये। सारी रात वह जाड़े से काँपता रहा। इस तरह पर मैं पकड़ा गया और कुछ भी न चुरा सका।

ऐसा ही है। तुम्हारे सब क्लेश तुम्हारी परस्पर विरोधी इच्छाओं के कारण आते हैं, और तुम्हारी इच्छाओं में संगति (harmony) नहीं होती, तथा आप जानते हैं कि जिस घर में फूट होती है वह नष्ट हो जाता है। इस लिये अपने दिलों और चित्तों को जाँच कर देखिये कि वहां शान्ति है या नहीं। यदि आप का लक्ष्य एक है और उद्देश्य अविभक्त है तो आपको कोई कष्ट नहीं होगा, कोई व्यथा नहीं होगी। किन्तु यदि वहां विरोध और प्रतिकूलता है तो घर अवश्य गिरजायगा और आपको अवश्य कष्ट होगा।

तुम्हारी व्यथा का यह कारण है, और आप स्वयं ही उसके लाने वाले हैं। आप अपने भाग्यों के आप ही मालिक हैं। मनुष्य की नीच आकाक्षायें भी होती हैं और ऊँच भी। दोनों में लड़ाई होती है। किन्तु विकास के सार्वभौम सिद्धान्त के अनुसार, इस झगड़े और लड़ाई में, योग्यतम बचा रहेगा। योग्यतम को जीते रखना प्रकृति का अभीष्ट है। इस प्रकार योग्यतम को जीते रखने वाले इस सार्वभौम क़ानून के अनुसार, इस संग्राम में उन इच्छाओं की विजय होती है जिनमें सब से अधिक शक्ति होती है। किन्तु यह शक्ति कहां से आती है? शक्ति सत्य से, और केवल सत्य से आती है। केवल उन्हीं इच्छाओं की जय होगी जिनमें सत्य, सदाचार, न्याय, उत्तमता या शुद्धता की मात्रा अधिक है। तुम्हें संगीन की नोक अर्थात् खांड़े की धार पर उन्नति और सुधार करना पड़ेगा।

तुम सदा विषयभोग में नहीं सड़ सकते। स्वार्थमय तृष्णा और लोभ में तुम नहीं सड़ सकते। तुम्हें उठना होगा, धीरे धीरे किन्तु विना किसी सन्देह के। यह है तुम्हारे सामने आनन्द। यहां यह कर्म का कानून हरेक और सब के लिये आनन्द लिये खड़ा है।

इच्छाओं की पूर्ति क्यों होना चाहिये? वेदान्त कहता है तुम्हारी असली प्रकृति, तुम्हारा असली आत्मा अमर है। राम अमर परमेश्वर है। अब तुम्हारी सब इच्छायें, मन और तन, सत्य के महासमुद्र में, नित्यता के महासागर में केवल लहरें और तरंगें होने के कारण उसी पदार्थ के स्वभाव के हैं जिसके कि वे बने हुए हैं। सत्यनारायण, परमात्मा या आत्मा दुनिया को अपनी सांस की तरह बनता है। संसार मेरी सांस है। आपकी आँखों की झपक में, मैं ने दुनिया की सृष्टि की। तुम्हारे नयनों की झपक में दुनिया की सृष्टि होती है। (मैं तुम्हारा आत्मा हूं)। इन सब इच्छाओं में परमात्मा और तुच्छ अहंकार (अर्थात् शुद्ध व मलिन अहंकार वा खुदा-खुदी) भाव मिले हुए हैं। इच्छाओं का वह स्वरूप जो आन्तरिक परमेश्वरता या अमरता पर निर्भर है सब इच्छाओं को पूर्ण होने के लिये बाध्य करता है। और इच्छाओं के वे तत्त्व जो माया पर अवलम्बित हैं इच्छाओं की पूर्ति में देर लगाते हैं। तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति में जो यह देर होती है उसका कारण तुम्हारी इच्छाओं का माया-तत्त्व है; और तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति की असंदिग्धता (certainty) का कारण तुम्हारी इच्छाओं की आन्तरिक दैवी प्रकृति है। अच्छा, आप कहेंगे कि इच्छायें दैवी कैसे हुई? सब इच्छायें

प्रेम के सिवाय और कुछ नहीं है, और प्रेम ईश्वर के सिवाय और कुछ नहीं है। क्या प्रेम ईश्वर नहीं है? सब इच्छायें उसी प्रकार की हैं जैसी कि आकर्षण शक्ति। आकर्षण शक्ति क्या है? यहां पृथिवी चन्द्रमा को आकर्षित कर रही है। यहां सूर्य पृथिवी को अपनी ओर खींच रहा है। यहां ग्रह एक दूसरे को अपनी ओर खींच रहे हैं—'विश्व-प्रेम', यहां प्रीति वा स्नेहाकर्षण (affinity) का क़ानून है, एक अणु दूसरे अणु को खींच रहा है। अणुओं या परमाणुओं में संसक्ति वा संलग्नता (cohesion) की शक्ति क्या है? एक अणु दूसरे अणु को खींच रहा है। आकर्षण करना तो तुम्हारे स्थिति-विन्दु से इच्छा करना है। यह खिंचाव, यह शक्ति, यह संसक्ति वा संलग्नता, यह रासायनिक चिपकाव या लगाव, यह आकर्षण क्यों है? यह सब इच्छा है। तुम्हारी सब इच्छायें दैवी या परमेश्वरीय हैं। इस प्रकार तुम्हारी इच्छाओं का ईश्वरीय स्वभाव उन (इच्छाओं) की पूर्ति पर आग्रह करता है। किन्तु जब तुम उन्हें स्वार्थी या शारीरिक अथवा व्यक्तिगत बना देते हो, तब उनका स्वार्थीपन उनको (इच्छाओं को) माया की प्रकृति का बना देता है और इस प्रकार उनकी पूर्ति में देर होती है।

तुम्हारी इच्छाओं की सरलता और निर्विघ्नता पूर्वक पूर्ति के लिये, और उनकी पूर्ण उपलब्धि के लिये, तुम्हें अपनी इच्छाओं के माया-स्वभाव को घटाना होगा, तुम्हें अपनी इच्छाओं की ईश्वरीय या निस्वार्थ-प्रकृति को प्रधानता देनी होगी, और तब वे फलवती होंगी।

हम एक कविता पढ़ कर इस विषय को समाप्त करेंगे। एक बार अनुभव कर लो कि तुम अपने भाग्य के आप ही

स्वामी हो, फिर देखो, तो कितने सुखी तुम होते हो। जब तुम ॐ रटते (उच्चारते) हो, और जब तुम समझते हो कि अपने भाग्य के तुम आप ही स्वामी हो. तब रोने और खीझने और दुःखी होने की कोई ज़रूरत नहीं रह जाती। तुमने अपनी अवस्थायें विभिन्न बनाई हैं। तुम अपनी प्रभुता की उपलब्धि करो, अपने आप को अपने आस-पास का गुलाम न समझो, इस सत्य का अनुभव करो, इस सत्य को जानो कि तुम अपने भाग्य के आप विधाता हो, और तुम चाहे जिस दशा में हो, तुम्हारा आस-पास कुछ भी हो, देह चाहे कारागार में डाल दी जाय, अथवा तेज धारा में बह रही हो, अथवा किसी के पैरों से कुचली जा रही हो, याद रक्खो "मैं वह हूँ" जो सब अवस्थाओं का स्वामी है, मैं देह नहीं हूँ, "मैं वह हूँ, भाग्य का स्वामी।" तुम्हारे मित्र तुम्हारे से बनाये जाते हैं। जिनको तुम मित्र कहते हो उनको तुम्हारी ही इच्छायें तुम्हारे इर्द गिर्द रखती हैं। जिनको तुम शत्रु कहते हो उनको भी तुम्हारी ही इच्छा ने तुम्हारे इर्द गिर्द रक्खा है। ऐ शत्रुओं, तुम्हें मैं ने बनाया है, ऐ मित्रो! तुम मेरी कृति हो। इस कल्पना को अनुभव करो, और इसका परिज्ञान करो और फिर देखो कि तुम कितने सुखी हो जाते हो।

Oh, brimful is my cup of joy,
Fulfilled completely all desires
Sweet morning's zephyrs I employ;
'Tis I in bloom their kiss admires,'
The rainbow colours are my attires,
My errands run like lightning fires,
The smiles of rose, the pearls of dew,